संत-मत की शिक्षाएँ

हरिश्चंद्र चड्ढा

‘संत–मत की शिक्षाएँ’

पुस्तक ‘पिता–पूत’ से उद्धृत

मुद्रक :

विषय-सूची

संत–मत की शिक्षाएँ 5

1. मनुष्य जीवन का आदर्श 7
2. क्या परमात्मा है? 9
3. परमात्मा कहाँ पर मिलता है? 11
4. प्रभु प्रेम से मिलता है 13
5. 'जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे' 19
6. हम प्रभु को क्यों नहीं देख रहे? 21
7. हम परमात्मा को कैसे पा सकते हैं? 24
8. संत–मत क्या है? 26
9. सत्गुरु कौन हैं? 26
10. गुरु की ज़रूरत 31
11. गुरु क्या उपदेश देता है? 34
12. 'जीते–जी मरना' क्या है? 36
13. 'द्विज' या 'दोजन्मा' किसको कहते हैं? 40
14. गुरु क्या करता है? 42
15. किसका आश्रय लेना चाहिए? 44
16. गुरु की सामर्थ्य 45
17. गुरु कैसा होता है? 46
18. गुरु–पद प्रभु की देन है 47
19. गुरु की संभाल 48
20. इंसान इंसान को क्यों पूजे? 51

21. दंभी गुरु से बचो 54

22. सत्संग किसको कहते हैं? 58

23. सत्संग का प्रभाव 59

24. 'नाम' क्या है? 68

25. 'नाम' कहाँ है? 75

26. 'सुरत–शब्द योग' : 75

i. सुमिरन क्या है? 76

ii. ध्यान किसको कहते हैं? 78

iii. भजन 81

27. संतों का आदर्श 82

संत-मत की शिक्षाएँ

संतों का काम विशुद्ध अध्यात्म से संबंध रखता है। वे जीवों को प्रभु से जोड़ने आते हैं।

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰749)

वह जन्म–मरण के बंधन से आज़ाद होते हैं। मालिक के भेजे हुए वे दुनिया में आते हैं, जीवों के कल्याण के लिए। अपनी तवज्जोह का उभार, ज़िंदगी का दान देकर वह आत्मा को पिंड अर्थात स्थूल देह से ऊपर लाकर प्रभु से जोड़ते हैं। यह काम है, जिसके लिए वे संसार में आते हैं। वे लोगों को सही–नज़री सिखाते हैं। वह स्वयं बंधनों से आज़ाद होते हैं, दूसरों को आज़ाद करते हैं,

आपि मुकतु मुकतु करै संसारु।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म०5, पृ.295)

वे समाजों को नहीं छेड़ते, न कोई नया समाज बनाते हैं। उनका मानना है कि सब समाजों में महापुरुष आए और सत्य को प्रस्तुत किया; स्वयं अनुभव को पाया। जो उनसे मिले, उनको अनुभव दिया। अपने आपको जानने और प्रभु को पाने के सिलसिले में जो अनुभव उन्हें हुए, लोगों के मार्गदर्शन के लिए ग्रंथों–पोथियों में पेश कर गए। उनके जाने के बाद जब तक अनुभवी लोग रहे, काम चलता रहा, जब उनकी कमी हो गई, लोग भूल में पड़ गए। फिर और महापुरुष आए और उस तालीम को, जिसे लोग भूल चुके थे, आकर फिर से ताज़ा कर गए।

वर्तमान समय में हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज ने आकर उस तालीम को ताज़ा किया, जिसके बारे में वे फ़रमाया करते थे कि यह कोई नई तालीम नहीं, परंपरा से चली आ रही है, सनातन से सनातन और पुरातन

से पुरातन है। हम कोई नई शिक्षा प्रस्तुत नहीं कर रहे। सब समाजों और धर्मग्रंथों में यह शिक्षा मौजूद है, जिसको अनुभवी पुरुषों की कमी होने के कारण उसके अनुयायी भूल रहे हैं। जब हुज़ूर से यह कहा गया कि आप कोई नया समाज बना लें, तो उन्होंने फ़रमाया, "कुएँ आगे ही बहुत लगे पड़े हैं। और कुआँ खोदने की क्या ज़रूरत है? मतलब तो पानी निकालकर पीने से है।" और वह पानी, अध्यात्म की निधि, हुज़ूर फ़रमाते थे, किसी एक या दूसरे समाज का एकाधिकार नहीं है। वह सबकी सांझी संपत्ति है। हिंदू निकाल ले उसकी है, मुसलमान निकाल ले उसकी है, सिक्ख निकाल ले उसकी है, ईसाई निकाल ले उसकी है। बड़ी सादग़ी और सफ़ाई के साथ, सहज–सुलभ भाषा में बात करते थे, जिसे मोटी से मोटी अक़्ल का आदमी भी आसानी से समझ जाए और विद्वान विचार करे, तो गूढ़ अर्थों के परत दर परत उघड़ते चले जाएँ।

महापुरुष समाजों के बाहरी चिह्न–चक्र पर नहीं जाते। वे यह नहीं देखते कि कोई हिंदू है या मुसलमान, सिक्ख है या ईसाई। परमात्मा ने इंसान बनाए। उनकी नज़र में इंसान–इंसान सब एक हैं। सब आत्मा–देहधारी हैं। मानवता के स्तर से सब एक हैं। आत्मा परमात्मा की अंश है। उसकी जाति वही है, जो परमात्मा की जाति है। हुज़ूर महाराज के कथनानुसार, "परमात्मा ने मुहरें लगाकर नहीं भेजा कि यह हिंदू है, यह मुसलमान, यह सिक्ख है, यह ईसाई।" अतः उनसे जब पूछा गया कि आपका मज़हब क्या है, तो फ़रमाया, "परमात्मा हिंदू है तो मैं हिंदू हूँ, सिक्ख है तो मैं सिक्ख हूँ, मुसलमान है तो मैं मुसलमान हूँ, ईसाई है तो मैं ईसाई हूँ।" यह था उनका दृष्टिकोण! उनके दरबार में सब क़ौमों, मुल्कों और समाजों के लोग आते थे। वे फ़रमाते थे, "जिस समाज में तुम हो, वह समाज तुम्हें मुबारक। अपनी–अपनी समाजों में रहो, अपने–अपने बोले (सम्मान सूचक शब्द) रखो, अपने–अपने चिह्न–चक्र, रीति–रिवाज़ रखो। तुम्हारे रीति–रिवाज़ से मेरी गरज़ नहीं। मेरा–तुम्हारा रिश्ता परमार्थ का है। अपनी–अपनी समाजों में रहकर उस गरज़ (लक्ष्य) को हासिल करो, जिसके लिए तुम किसी समाज में प्रवेश पाए हुए हो अर्थात अपने आपको जानो और प्रभु से जुड़ो, जो सब समाजों की मूलभूत शिक्षा और परम लक्ष्य है।" इसी संदर्भ में फ़रमाते थे, "मुझे हिंदू भी प्यारे हैं, मुसलमान भी,

सिक्ख भी, ईसाई भी और मज़हबों वाले भी, सब मुझे प्यारे हैं। राम–राम कहो, सलाम–आलेकुम कहो, जयदेवा कहो, मुझे सब स्वीकार है।" सब महापुरुषों ने एकता का यह आदर्श प्रस्तुत किया है कि इंसान–इंसान सब एक हैं। दशम गुरु साहिब ने फ़रमाया :

कोऊ भइओ मुंडीआ संनिआसी, कोऊ जोगी GS II 451
भइओ कोऊ ब्रहमचारी कोऊ जती अनुमानबो।।
हिंदू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी
मानस की जाति सबै एकै पहिचानबो।।

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰19)

अर्थात कोई सिर मुंडाकर संन्यासी बना बैठा है, कोई योगी बना बैठा है, कोई ब्रह्मचारी है, कोई जती है। कोई हिंदू, कोई तुर्क अर्थात मुसलमान, कोई राफ़जी, कोई अमामसाफ़ी– जैसे–जैसे लेबल किसी ने लगाए, वैसा–वैसा वह कहलाता है, मगर हैं तो सब इंसान हीं। फिर कहा :

एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतिस औ आब को रलाउ है।।

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰19)

अर्थात बनावट के लिहाज़ से भी सब इंसान एक हैं। रहते भी एक जगह हैं। पानी, मिट्टी, अग्नि और वायु के बने ये शरीर हैं।

मनुष्य जीवन का आदर्श

मनुष्य जन्म बड़े भाग्य से मिलता है। यह सब महापुरुषों ने कहा है :

यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जन्म भटका जब खाया।।

– सार बचन, पद्य (बचन 15, शब्द 1, सिफ़त 1)

जन्म–जन्मांतर आवागमन में चक्कर काटकर, नीची योनियों से तरक़्क़ी करके आख़िर मनुष्य देह मिलती है।

कई जनम भए कीट पतंगा।। कई जनम गज मीन कुरंगा।।
कई जनम पंखी सरप होइयो।। कई जनम हैवर बृख जोइयो।।
मिल जगदीस मिलन की बरीआ।। चिरंकाल इह देह संजरिया।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰176)

84 लाख योनियों की यह (मानव योनी) सरदार योनी है।

अवर जोनि तेरा पनिहारी।। इसु धरती महि तेरी सिकदारी।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰374)

अर्थात सारी योनियाँ तेरी सेवा के लिए हैं, तू सर्वश्रेष्ठ है। *"बाद अज़ ख़ुदा बुजुर्ग तुई क़िस्सा मुख़्तसर,"* अर्थात परमात्मा के बाद दूसरा दरजा इंसान का है। इसकी श्रेष्ठता क्या है? इसमें आकाश तत्त्व प्रबल है, यह सत्य–असत्य का निर्णय कर सकता है। यह काम और किसी योनी में नहीं हो सकता। सबसे बड़ा काम, जो हम मनुष्य जीवन ही में कर सकते हैं, वह प्रभु की प्राप्ति है। गुरुवाणी में आता है :

भई परापति मानुख देहुरीआ।। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।।
अवरि काज तेरै कितै न काम।। मिलु साधसंगति भज केवल नाम।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी दीपकी म॰1, पृ॰12)

अर्थात मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है, प्रभु को पाना। दूसरे सारे काम निरर्थक हैं। कबीर साहिब कहते हैं :

इस देही कउ सिमरहि देव।। सो देही भजु हरि की सेव।।

– आदि ग्रंथ (भगता कबीर, पृ.1159)

देवता शुभ कर्मों का फल भोगकर मनुष्य देह पाते हैं, वह देह बड़े भाग्य से तुम्हें मिल चुकी है। उसमें प्रभु को पाओ। मौलाना रूम साहिब कहते हैं :

अंदर हैवां के सर सूए ज़मीं दारद,
तू आदमीई आख़िर सर जानिबे बाला कुन।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ी (ग़ज़लिया, भाग 3, पृ.260)

अर्थात पशु का सिर भूमि की ओर बनाया गया है, वह सारी उम्र खाने–पीने में लगा रहे, तो कोई बात नहीं। तेरा सिर कुदरत ने ऊपर बनाया है, तू ऊपर देख। हरेक समाज में मनुष्य जीवन का महत्त्व बताया गया है। हिंदू धर्मशास्त्रों ने इसे 'नर–नारायणी देह' कहा है। इसमें आत्मा और परमात्मा, दोनों का निवास है। ऋग्वेद इसे 'ब्रह्मपुरी' अर्थात ब्रह्म का साक्षात्कार करने का स्थान कहता है। कुरान शरीफ़ (2.34) में आता है कि ख़ुदा ने जब इंसान का पुतला बनाया, तो फ़रिश्तों को उसे सिजदा

(दंडवत) करने का हुक्म दिया। उपनिषदों में वर्णन आता है कि जब सारे तन बन चुके, तो ऋषियों की आत्माएँ आईं और उन्होंने मानव तन स्वीकार किया, क्योंकि देव योनियों में फिर वापस आना पड़ता है। पलटू साहिब ने इसीलिए कहा कि हमको न प्रचलित मुक्ति चाहिए, न स्वर्ग, न बैकुंठ क्योंकि वहाँ से फिर वापस आना पड़ेगा :

संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार।।...
ना चाहैं बैकुंठ न आवागवन निवारा।
सात स्वर्ग अपवर्ग तुच्छ सम ताहि बिचारा।।

— पलटू साहिब की बानी, भाग-1 (57, पृ.27)

मानव तन की श्रेष्ठता इसमें है कि मनुष्य जन्म ही में हम प्रभु को पा सकते हैं। मौलाना रूम कहते हैं :

अर्श अस्त नशेमने-तू शर्मत बादा,
काही ओ मुक़ीमे-ख़ाते-ख़ाक शवी।

क्या परमात्मा है?

अब सवाल पैदा होता है, क्या परमात्मा है? क्या हम उसको देख सकते हैं? दो प्रकार के कथन इस पर मिलते हैं। एक यह कि परमात्मा को आज तक किसी ने नहीं देखा। वह परमात्मा अनाम है, अशब्द है। जब यह दुनिया नहीं बनी थी, कुछ नहीं था, तब एक वही था। उस अव्यक्त को किसी ने नहीं देखा, न देख सकता है। वहाँ देखने–दिखाने के सारे सिलसिले ख़त्म हो जाते हैं। वह लय होने का स्थान है। जो व्यक्त हुई सत्ता, *"एको अहम् बहुस्याम "* (मैं एक से अनेक हो जाऊँ), *"कुन फ़ा यकून"* (हो, पस हो गया), *"एको कवाओ तिसते होय लख दरियाओ"*, *"एकंकार"* इत्यादि, वह एक है और एक ही का सब पसारा है। 'Truth is but one,' वह सत् है, अटल–अविनाशी है। उस एक को भी हम सीमाओं में वर्णन करते हैं, क्योंकि हम स्वयं सीमाबद्ध हैं।

हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसो रे।।

— आदि ग्रंथ (सोरठि म०5, पृ.612)

वरना वह न एक है न दो :

एक कहौं तो है नहीं, दुइ कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर बिचारि।।

— कबीर साहिब, बीजक (पृ.94)

और जिसको हम एक कहते हैं, उसका भेद जो जान ले, वह कर्ता का रूप हो जाता है।

इसु एके का जाणै भेउ।। आपे करता आपे देउ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰930)

उसका अनुभव कोई सत्गुरु ही करा सकता है :

सतिगुर ते दृड़िआ इकु एकै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰181)

उस महान सुरत के ख़्याल की रौ जब इज़हार में आई, व्यक्त हुई, उस व्यक्त प्रभु–सत्ता को हम देख भी सकते हैं, सुन भी सकते हैं। मौलाना रूम कहते हैं :

बेबायद चश्मे सरे माशूक़ दीदन,
कलामश रा बे गोशे ख़ुद शुनीदन।

अर्थात हमें चाहिए कि प्रभु प्रीतम को अपनी आँखों से देखें और अपने कानों से उसकी वाणी को सुनें। स्पष्ट संकेत दिया है कि परमात्मा को हम देख सकते हैं। गुरु नानक साहिब से पूछा गया कि क्या परमात्मा है? उन्होंने जवाब दिया, "हाँ, है।

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰397)

कोई दलील नहीं दी। वे देख रहे हैं। ईशु मसीह से पूछा गया, तो यही जवाब दिया, 'Behold the Lord,' कि देखो, वह नज़र आ रहा है। देखने वाले को क्यों दलील देनी चाहिए? वह तो देख रहा है। दिखा भी सकता है। हरेक समाज में इसका प्रमाण मिलता है। कबीर साहिब ने फ़रमाया :

अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ु दीना मीठा।।
कहिं कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा।।

— आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती कबीर, पृ.1350)

कि यह परमात्मा अलख (अलक्ष्य) है, वह लिखा नहीं जा सकता, जब तक हम इंद्रियों के घाट पर बैठे हैं। गुरु ने गुर बतलाया, जिससे मैंने देखा। मेरी सारी शंकाएँ दूर हो गईं कि परमात्मा है। यह इकरार है, अहंकार नहीं। एक तो feelings अर्थात भावनाओं में आकर कहता है कि परमात्मा परिपूर्ण है, सबका आधार है। इस आधार पर सूक्ष्म तत्त्वों ही का ध्यान कर सकते हैं। कोई emotions अर्थात भावावेश में आता है, ख़्याल में मस्ती आ जाती है। कोई inferences अर्थात बुद्धि–विचार के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं कि कोई है। जिन्होंने देखा, उन्होंने साफ़ इकरार किया कि परमात्मा है, हमने उसे देखा है।

रामकृष्ण परमहंस के पास स्वामी विवेकानंद गए। पूछा, "हे महात्मा! क्या तूने प्रभु को देखा है?" उन्होंने कहा, "हाँ बच्चा! मैं उसको देख रहा हूँ, जैसे मैं तुझको देख रहा हूँ, वरन इससे भी ज़्यादा सफ़ाई के साथ।" श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज से चंद ईसाइयों ने पूछा कि आपने परमात्मा को देखा है? तो फ़रमाया, "हाँ गुरु कृपा से देखा है।"

परमात्मा कहाँ पर मिलता है?

वह परमात्मा कहाँ पर है? वह शरीर रूपी हरिमंदिर में है। इस शरीर की शोभा तब तक है, जब तक हम (आत्मा) इसके साथ हैं।

तिचरु वसहि सुहेलड़ी जिचरु साथी नालि।।
जा साथी उठी चलिआ ता धन खाकू रालि।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰50)

उपनिषद् कहते हैं, वह कौन–सा महान कारीगर है जिसने इस शरीर की रचना की है? इसमें नौ दरवाज़े हैं, दो आँखों के, दो कानों के, दो नासिका, मुँह, गुदा और इंद्री। ये द्वार होते हुए भी आत्मा इससे बाहर भाग नहीं सकती। साँस बाहर जाता है, बाहर रह नहीं सकता। कोई ताक़त उसको धकेलकर वापस ला रही है। जब वह ताक़त हटती है, तो आत्मा को यह शरीर छोड़ना पड़ता है। वही ताक़त खंडों–ब्रह्मंडों को लिए खड़ी है। जब वह ताक़त खंडों–ब्रह्मंडों से हटती है, तो खंडों–ब्रह्मंडों की प्रलय हो जाती है। उस ताक़त को 'नाम' या 'शब्द' कहते हैं। वह हम सबका जीवनाधार है। महापुरुषों ने कहा है :

घट घट में हरि जू बसे, सन्तन कह्यो पुकार।

श्री गुरु अमरदास जी साहिब फ़रमाते हैं :

इसु गुफा महि अखुट भंडारा।।
तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰124)

वह परमात्मा इसके अंतर में है। उसे इंद्रियों के घाट पर लिखा नहीं जा सकता। फिर फ़रमाते हैं :

सरीरहु भालणि को बाहरि जाए।।
नामु न लहै बहुतु वेगारि दुखु पाए।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰124)

जो उसको पाना चाहते हैं, वह शरीर के मंदिर ही में उसे पा सकते हैं; जो बाहर और जगह तलाश करते हैं, उनकी मेहनत बेग़ार की तरह है कि सारा दिन काम करे और मज़दूरी न पाए। *"देखे का मत एक।"* सब महापुरुषों ने, जिन्होंने देखा, इस बात की गवाही दी है कि वह परमात्मा घट–घट में निवास करता है। पहले अपने घट में, अपने अंतर में उसे देखा, फिर गवाही दी।

इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार, म॰4, पृ.309)

अर्थात यह शरीर हरिमंदिर है, जिसमें उस सच्चे प्रभु की ज्योति जग रही है।

बाइबिल में आता है :

'Know ye not that ye are the Temple of God,
and that the Spirit of God dwelleth in you?'

- I Corinthians (3:16)

अर्थात यह शरीर उस प्रभु का मंदिर है, वह इसमें निवास करता है और वह तुम्हारा अपना आपा है। जब अपने अंतर में उसको देखा, तो बाहर सारे संसार में भी उसको देखा।

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म॰4, पृ॰463)

एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु है हरि रूपु नदरी आइआ।।
– आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰922)

यह देखने वालों के कथन हैं। हदीसे–कुदसी में आता है :

कुन्तु कन्ज़न मख़्फ़ियन फ़ा अहबबतु उरफ़ा
फ़ा ख़लक्तुल-ख़लका लिकाई उरफ़ा

अर्थात ख़ुदा ने कहा कि मैं छिपा हुआ एक ख़ज़ाना था। मैं इज़हार में आना चाहता था। इसलिए, मैंने सृष्टि की रचना कर दी।

प्रभु प्रेम से मिलता है

हम हैं, आत्मा। आत्मा अंश है, जिसका अर्थ है कि उसका अंशी भी है। हम चैतन्य–स्वरूप हैं, Conscious Entity हैं। वह प्रभु All-Consciousness का, महाचैतन्यता का ठाठें मारता सागर है। हरेक अंश अंशी से मिलना चाहता है। तो आत्मा के अंतर में स्वाभाविक गुण है, परमात्मा से मिलने का, innate है, जन्मजात है यह गुण उसमें। यह बाहर विभिन्न आकारों में उसे ढूँढता रहता है। पहले खेल–कूद में, फिर इंद्रियों के भोगों–रसों में, फिर बुद्धि–विचार में—यह बुद्धि भी एक विषय ही है। जब इन सारी चीज़ों में हमको सुख और शांति नहीं मिलती, तो हमारी नज़र कहीं और पड़ती है। क्योंकि सच्ची तलाश होती है, इसलिए वह मालिक भी उसका साधन उपलब्ध करता है। श्री गुरु रामदास जी कहते हैं :

मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर।।
– आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰861)

कि मेरे अंतर में प्रेम का अड़ियाला तीर, जिसका अगला सिरा टेढ़ा होता है, लग जाए, तो निकलता नहीं– वह तीर लग चुका है। प्रभु के मिलने की तीव्र अभिलाषा, लगन, तड़प, मेरे हृदय में बस गई है, जैसे अड़ियाला तीर लग जाए, तो निकलता नहीं।

हरि दरसन कउ मेरा मनु बहु तपतै जिउ तृखावंतु बिनु नीर।।
– आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰861)

यह लगन किसलिए है? हरि के दर्शनों को पाने के लिए। यह तड़प कैसी है? जैसे कि प्यासा पानी के लिए तड़प रहा हो। ऐसी यह तड़प है।

प्यासे आदमी की अवस्था बुरी होती है। जब तक पानी न मिले, उसको चैन नहीं आता। परमात्मा प्रेम है, आत्मा उसकी अंश है– यह भी प्रेम है। इसका स्वभाव है, प्रकृति है, कहीं न कहीं लगकर रहेगी। इस समय इसका प्रेम शरीर से, इसके संबंधों से लगा पड़ा है। यह सारी चीज़ें नश्वर हैं, बदल जाने वाली हैं। या हम छोड़ जायेंगे या यह हमको छोड़ जायेंगी। इनमें सुख बना नहीं रह सकता।

जउ सुखु कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह।।

– आदि ग्रंथ (सलोक म॰9, पृ॰1427)

राम किसको कहते हैं? वह परमात्मा जो रम रहा है। संत–महात्मा प्रभु भक्त होते हैं, प्रभु की पूजा सारी दुनिया को सिखाते हैं। वह स्वंय उससे जुड़े होते हैं, लोगों को जोड़ना चाहते हैं। वह अपने आप से नहीं, प्रभु से जोड़ते हैं। जिसको प्रभु की लगन लग चुकी है, उसकी अवस्था को वही जान सकता है, जो स्वयं घायल हो चुका है इस लगन से।

घायल की गत घायल जानै, की जिन लाई होय।

– मीराबाई की शब्दावली (शब्द 3.2, पृ.4)

वह क्या चाहता है? या तो वह (प्रभु) मेरे पास आए या मैं उसके पास जाऊँ– दोनों में से एक चीज़ ज़रूर माँगता है। वह मिल जाए, तो मैं उसको देखता रहूँ, वह मुझको देखता रहे। न किसी और को वह देखे न मैं देखूँ। यह प्यार का इज़हार है। ख़ुसरो साहिब कहते हैं, "तू मेरी आँखों में आकर बस जा, ताकि दुनिया तुझे न देखे। न तू किसी और को देखे, न मैं तेरे सिवाए किसी को देखूँ।"

मन तो शुदम तू मन शुदी, मन तन शुदम तो जां शुदी,
ता कस नगोयद बअद अजीं, मन दीगरम तू दीगरी।।

– अमीर ख़ुसरो (पृ.112)

यही कबीर साहिब कहते हैं :

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (प्रेम का अंग 50, पृ.47)

हमारी आत्मा प्रेम का स्वरूप है और प्रभु को पाने का साधन भी प्रेम है। जितने साधन, पूजा–पाठ इत्यादि हम करते हैं, इसीलिए करते हैं कि हमारे अंतर में प्रभु के लिए प्यार बने। यह सब करते हुए प्रभु का प्यार नहीं जागा, तो क्या फ़ायदा?

हज़ार साल इबादत कुनद नमाज़ी नीस्त,
कसे कू इश्क़ नदारद ख़ुदा राज़ी नीस्त।

– ख़्वाजा हाफ़िज़

अर्थात सौ साल इबादत करता रहे, वह सही मा'नों में नमाज़ी नहीं बन सकता। जिसके अंतर में प्रभु का प्रेम नहीं उभरा, वह प्रभु के भेद को कैसे पा सकता है? प्रेम ऐसी ज्वाला है, जिसमें सिवाए प्रीतम के और कोई चीज़ ठहर नहीं सकती। हदीसे–कुदसी में आता है :

अलइश्क़ नार मा तुहरिकु सिवा अल्लाह।

अर्थात प्रेम वह ज्वाला है, जिसमें सिवाय उसके, जिसको हम पाना चाहते हैं और कोई नहीं रह सकता। दसम गुरु साहिब ने फ़रमाया :

साचु कहों सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीओ तिन हीं प्रभ पाइओ।।

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰14)

तो कहते हैं कि मैं उस प्रभु के दर्शनों के लिए ऐसे तड़प रहा हूँ, जैसे प्यासा पानी के लिए तड़पता है।

हमरी बेदन हरि प्रभु जानै मेरे मन अंतर की पीर।।

– आदि ग्रंथ (गोंड चउपदे म॰4, पृ॰861)

कहते हैं, मेरे मन की अवस्था को केवल वह प्रभु जानता है, या वह, जो मेरी तरह घायल हो। हम दुनिया के लिए तो हज़ार बार रोते नज़र आते हैं। वह ई–सू (इस तरफ़ के, दुनिया के लिए) रोना है। आँ–सू तो उस तरफ़ के लिए, प्रभु के लिए होते हैं। कितने लोग हैं, जो प्रभु के लिए रोते और सिर पटकते हैं? किसी महात्मा का जीवन देखो, उसमें यह तड़प बेअख़्त्यार होती है। यह पूर्व संकेत है प्रभु के आने का, वैसे ही जैसे बादल घिर आएँ, तो वर्षा का या पेड़ पर कलियाँ निकलना फल लगने का सूचक है। जिस हृदय की यह अवस्था बन गई, वहाँ प्रभु के आने की आशा है।

तो गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं कि मेरे अंतर की पीड़ा को प्रभु ही जानता है। गुरु अमरदास जी साहिब एक स्थान पर कहते हैं :

इकु पलु खिनु विसरहि तू सुआमी जाणउ बरस पचासा।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰3, पृ॰601)

एक कवि ने कहा है कि हिसाब लगाने वाले ने क्या कभी यह भी हिसाब लगाया है कि विरह की रात कितनी लंबी होती है? दुनिया तो रात को दुनिया के लिए रोती है, प्रभु–भक्त प्रभु के लिए रोते हैं।

जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनी होय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (विरह का अंग 19, पृ.37)

आँसुओं का आना ज़रूरी है। उसके बिना जन्मों–जन्मों के संस्कार जो दबे पड़े हैं, वह धोए नहीं जा सकते। मौलाना रूम ने इसीलिए कहा है :

मी रसी दर कअबा ज़ाहिद गर रवी राहे-तरी,
ज़ुहदे ख़ुश्क-ओ-सौमे-तू बे दीदाए गिरयां अबस।

– मौलाना रूमी

"यदि तू काबे का हज (तीर्थ–यात्रा) करना चाहता है, तो तरी के रास्ते जा, ख़ुश्क़ी के रास्ते वहाँ पहुँच नहीं सकेगा। तरी का रास्ता कौन–सा है? यही आँखों के आँसू।"

मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर।।

– आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰862)

स्वाभाविक है, जिसकी लगन लगी है, उसकी बात कोई आकर सुना दे, तो वह भी अच्छा लगता है। प्यारा तो प्रीतम है, मगर उसकी बात सुनाने वाले से भी प्यार है। जो उस तक पहुँचाए, उसका कितना प्यार होगा?

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु पिआरा हउ तिसु पहि आपु वेचाई।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰757)

अर्थात मेरे प्रीतम से कोई आकर मुझे मिला दे, तो मैं अपनी जान बेच दूँगा उस पर। किसलिए?

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰96)

हरि के दर्शनों की मुझे चाह है। तो गुरु रामदास जी कहते हैं, " जो मेरे हरि प्रीतम की बात सुनाए वह मेरा सच्चा मित्र है, मेरा भाई है।" अब देखिए, यहाँ समाजों का कहाँ सवाल है? चार शराबी हों, किसी समाज के हों, कितना प्यार होता है, उनमें! हम सब उस प्रभु के पुजारी हैं, फिर भी आपस में प्यार क्यों नहीं? कहना पड़ेगा कि प्रभु के लिए प्यार नहीं जागा। यह पहला क़दम है, परमार्थ के रास्ते में।

बिसरि गई सब ताति पराई।। जब ते साधसंगति मोहि पाई।।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।।

– आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1299)

वहाँ (साधु की संगति में) यह उपदेश नहीं मिलता कि इससे मिलो, उससे न मिलो। वह कहते हैं कि सबमें परमात्मा है। क़ौमों, मज़हबों का सवाल नहीं।

नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ जो सबसै लए मिलाइ जीउ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰72)

सत्गुरु सबको मिलाकर बैठता है। वहाँ बैठे हुए यह ख़्याल भी नहीं आता, यह कौन है, वह कौन है? एक बार श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज से ज़िक्र हुआ कि महाराज! जिनको उपदेश मिल गया, कुछ तरक़्क़ी करके पहुँच गए, कोई अभी स्कूल में बैठे हैं। उनमें कैसे बनेगी? कहने लगे, "दरिया के पार जाना है। कोई पहली बेड़ी (नाव) में पहुँच गए, कोई दूसरी में– आख़िर घाट तो वही है, जहाँ जाना है? सब वहीं मिलेंगे।"

सचा साकु न तुटई गुरु मेले सहीआह।।

– आदि ग्रंथ (मारू काफी म॰1, पृ॰1015)

यह अटूट रिश्ता है, जिसमें गुरु हमें पिरोता है। आत्मा न हिंदू है, न मुसलमान है, न सिक्ख है, न ईसाई। आत्मा की जाति वही है, जो परमात्मा की जाति है। आत्मा–आत्मा में आपस में सच्चा रिश्ता है। वह आगे ही मौजूद है, हम उस रिश्ते को भूल चुके हैं। महात्मा हमको मिलाता है, उस रिश्ते की सूझत कराता है। उसकी कृपा से हम देखते हैं कि सबमें वही एक रिश्ता क़ायम है।

मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभ के ले सतिगुर की मति धीर।।

– आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰862)

कहते हैं, हे सखी!

ठाकुरु एकु सबाई नारि।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰933)

सब आत्माएँ सखियाँ हैं, और परमात्मा एक पुरुष है, जिसको मिलने से सदा का सुहाग मिल जाता है। कहते हैं, हे सखियों, आपस में मिल बैठो। और क्या करो? प्रभु की बातें करो, किसी सत्गुरु से मति लेकर। सत्गुरु से मिलो। वह आपको प्रभु से मिलाएगा। कहते हैं, सत्गुरु के पाने से तुम्हारी मति धीरज पकड़ेगी, बुद्धि स्थिर होगी। वह बुद्धि को स्थिर करने, उसे टिकाव में लाने का उपाय बताएगा।

वैसे तुम कितना भी मालिक के गुणानुवाद गाओ, बुद्धि तर्क–वितर्क करती रहती है, सोचती रहेगी हर वक़्त। है नेक ख़्याल, मगर वही रुकावट का कारण बन जाता है। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, "पुण्य कर्म या पाप कर्म दोनों ही जीव को बाँधने के लिए एक से हैं, जैसे सोने की बेड़ी हो या लोहे की बेड़ी।" ख़्याल अच्छा कर रहा है, मगर है तो फैलाव में। मति स्थिरता कैसे पकड़ेगी? कहते हैं, सत्गुरु से मिलो, किसी अनुभवी पुरुष से। वह आपको इसे स्थिर करने का साधन देगा। अंतर में थोड़ा रस मिलेगा, टिकाव आएगा, तो वह भूमि बनेगी, जिससे आगे का रास्ता खुलेगा। इसलिए कहते हैं, हे सखियों, आपस में मिल बैठो।

होइ इकत्र मिलहु मेरे भाई दुबिधा दूरि करहु लिव लाइ।।

– आदि ग्रंथ (बसंतु म॰5, पृ॰1185)

अर्थात सब मिल बैठो और जो दोरुखी, दुविधा बनी पड़ी है, उसको हटा दो और प्रभु के गुणानुवाद गाओ। आत्मा चैतन्य है। यह अंश है, अपने अंशी से, महाचैतन्य प्रभु से मिलना चाहती है। असल बात तो इतनी है। धक्के खा–खाकर आख़िर मनुष्य इसी ओर आता है। कुछ पीछे धक्के खाकर इस बात पर पहुँच चुके हैं, कुछ आगे धक्के खाकर समझ जायेंगे।

जन नानक की हरि आस पुजावहु हरि दरसनि साँत सरीर।।

– आदि ग्रंथ (गोंड म॰4, पृ॰862)

अब प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मेरे मन की जो आशा है, उसको पूर्ण कर दो। वह क्या? हरि दर्शन! और मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श भी यही है। शिष्य और गुरु में कोई अंतर नहीं। गुरु में वह चीज़ प्रकट है। शिष्य उसे प्रकट करने के लिए गुरु के द्वार पर आया है। इंसान सीखता रहता है, आयु भर। जो चीज़ सीखना चाहते हो, उसके माहिर, अनुभवी के पास जाओ। उसका नाम कुछ रख लो। गुरु या सत्गुरु शब्द आज बदनाम हो रहा है। उसका कारण यही है कि जो समर्थ नहीं हैं, वह स्वांग रचाए बैठे हैं, गुरु का। उनको देखकर गुरु का नाम बदनाम होता है। लोग भी सच्चे हैं, मगर सच्चे गुरु के बिना जीव का कल्याण न हुआ न हो सकता है।

‘जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे’

जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी तृलोचन, पृ॰695)

अर्थात यह शरीर हरिमंदिर है, यह सारा जगत ही हरिमंदिर है। यह मानव देह एक लघु विश्व है, बहत् विश्व का नमूना है। यह शरीर हमारा, ब्रह्मांड के नमूने पर बनाया गया है। ब्रह्मांड में तीन मंडल हैं– स्थूल, सूक्ष्म और कारण। उसके ऊपर, पार–ब्रह्म (महाकारण) तथा सचखंड है। इन्हीं खंडों के अनुसार यह शरीर प्रभु ने हमें दिया है। स्थूल जगत में काम करने के लिए यह स्थूल शरीर है। सूक्ष्म जगत में काम करने के लिए सूक्ष्म शरीर और कारण में काम करने के लिए कारण शरीर हमें दिया है। यह आवरण– स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण के, इसलिए दिए गए हैं कि जब चाहें हम यहाँ काम करें, जब चाहें सूक्ष्म मंडलों में काम करें और जब चाहें इन तीनों के पार काम करें। ब्रह्मांड तक ब्रह्म का घेरा है, आगे पार–ब्रह्म और सचखंड है। वह व्यक्त प्रभु–सत्ता, जिसको ‘नाम’ या ‘शब्द’ कहते हैं, उसने यह सब बनाए हैं। सूक्ष्म दुनिया स्थूल जगत से अधिक सुंदर है, कारण सूक्ष्म से और दिव्य–मंडल सबसे सुंदर है। इसीलिए कहा :

'All his glory and beauty lies within you,
and he finds great delight in living there.'

- Thomas à Kempis, 'Imitation of Christ'

अर्थात सौंदर्य का भंडार तुम्हारे अपने अंदर है।

जमशेद बादशाह के पास एक प्याला था, 'जामे–जमशेद' जिसमें वह दुनिया की हरेक वस्तु को देख सकता था। यह उल्टा प्याला है, सिर की खोपड़ी, जिसमें पिंड, अंड, ब्रह्मांड, वरन सचखंड तक हम देख सकते हैं। गुरुमुख होकर अंतर दिव्य–मंडलों पर हम विचर सकते हैं। गुरु अमरदास साहिब फ़रमाते हैं :

काइआ अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला।।
काइआ अंदरि जगजीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला।।
काइआ कामणि सदा सुहेली गुरमुखि नामु समाला।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰754)

विचित्र रचना है, इस शरीर की। यह स्थूल शरीर जो है, इसमें छः चक्र हैं। कबीर साहिब ने एक पद, *"कर नैनों दीदार महल में प्यारा है,"* में हरेक चक्र का सुविस्तार वर्णन किया है। पहला गुदा चक्र है, उसका धनी गणेश है। दूसरा इंद्री चक्र है, जिसका धनी ब्रह्मा है। तीसरा नाभि चक्र है, उसका धनी विष्णु है, चौथा हृदय चक्र है, उसका धनी शिव है। पाँचवाँ कंठ चक्र है, जो शक्ति का स्थान है। वह विष्णु (सतो), ब्रह्मा (रजो) तथा शंकर (तमो), तीनों गुणों की माता है। छठा चक्र दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे है, जिसे शिव–नेत्र, तीसरी आँख या तीसरा तिल भी कहते हैं। नीचे के चक्र वहीं से ताक़त लेते हैं। यह शरीर में आत्मा की बैठक या रूह का ठिकाना है। यहाँ से सारे शरीर में जीवन–सत्ता फैली हुई है। योगियों के चक्र यहाँ आकर ख़त्म हो जाते हैं। इन चक्रों को तय कर योगीजन अनहद शब्द को पकड़कर (कृत्रिम) 'सहस्रार' में लीन होते हैं। गुरु नानक साहिब ने योगियों से बातचीत में इसका संकेत दिया है :

काइआ नगरी महि मंगणि चड़हि जोगी ता नामु पलै पाई।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰908)

अर्थात इन छः चक्रों से ऊपर आओ, तो तुम्हें 'नाम' का परिचय अनुभव मिलेगा। ये तो थे, पिंड के छः चक्र। आगे भी छः चक्र हैं: 1. सहस्रार या सहंसदल कमल 2. त्रिकुटी 3. सुन्न 4. महासुन्न 5. भंवरगुफा तथा 6. सतलोक। इससे अधिक व्याख्या[26] की यहाँ ज़रूरत

26. सुविस्तार व्याख्या के लिए सावन–कृपाल पब्लिकेशन्ज़ द्वारा प्रकाशित पुस्तक, 'The Crown of Life' देखें।

नहीं। इन मंडलों को पूरे गुरु की सहायता से ही तय किया जा सकता है। अनुभवी महापुरुष पहले दिन ही सुरत को पिंड के चक्रों के ऊपर ले आता है; फिर दरजे–बदरजे सतलोक या सचखंड में पहुँचाता है।

नीचे के चक्रों में ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ हैं। जो उनमें लग जाए, वह आगे तरक़्क़ी नहीं कर सकता अर्थात प्रभु प्राप्ति का जो आदर्श है, उससे दूर रह जाता है। इसीलिए महापुरुष ऋद्धियों–सिद्धियों से काम लेने की कड़ी मनाही करते हैं। सभी समाजों के महापुरुषों ने मानव देह के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

पस बज़ाहर आलमे असग़र तुई, पस बेमानी आलमे अकबर तुई।
तो मकानी अस्ल तो दर लामका, ईंदुका बरबंदो विकुशा आंदुकां।
आं तुई किह् बे-बदन दारी बदन, पस मतर्स अज़ जिस्मो-जां बेरूं शुदन।

– मौलाना रूमी, हक़ीक़ते इन्साने–क़ामिल

अर्थात तू देखने में छोटा है, परंतु बृहत् विश्व को अपने अंदर लिए हुए है। तू तन से बंधा नज़र आता है, परंतु वास्तव में तू अनंत, अपार, व्यापक है। तेरी बाहरी स्थूल देह की दुकान खुली हुई है, जिससे तू स्थूल जगत को देख रहा है। यह दुकान बंद कर अर्थात स्थूल देह से ऊपर आ जा और दूसरी दुकान खोल अर्थात एक नई दुनिया में जाग। आगे कहते हैं :

तो बतन हैवानी बजानी अज़ मलक, ता रवी हम बरज़मीनो बरफ़लक।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.161)

कि तू यह स्थूल देह नहीं, इस देह के अंदर तेरी और देह भी है, ताकि जब चाहे यहाँ ज़मीन पर काम करे, जब चाहे इससे ऊपर उठकर दिव्य–मंडलों में काम करे।

हम प्रभु को क्यों नहीं देख पा रहे?

महापुरुष कहते हैं, हमने प्रभु को देखा है। हम क्यों नही देख सकते? हम आत्मा–देहधारी हैं। आत्मा अजर–अमर है, मन के साथ लगकर जीव बनी पड़ी है। हमारी आत्मा मन के वश होकर, बाहर इंद्रियों के घाट पर फैलाव के कारण, जिस्म का, जगत का रूप बन गई। मन–इंद्रियाँ आत्मा से ताक़त लेती हैं और उसी पर सवार हैं। अतः कठोपनिषद् (2.3:10) कहता है :

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च प विचेष्टति तामाहूः परमां गतिम्।।

अर्थात जब तक इन्द्रियाँ दमन न हों, मन खड़ा न हो और बुद्धि भी स्थिर न हो, तब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता।

वह परमात्मा हमारे अंदर है, परंतु बाहर फैलाव के कारण हम उसे देख नहीं रहे। तुलसी साहिब ने फ़रमाया :

है घट में सूझत नहीं लानत ऐसी जिन्द।
तुलसी या संसार को भया मोतियाविन्द।

हमारे और उस प्रभु के दरम्यान सबसे बड़ी रुकावट कौन सी है? मन। एक फ़क़ीर ने कहा :

गर तो दारी दर मिले ख़ुद अज़्मे रफ्तन सूए दोस्त।
यक कदम बर नफ़्से ख़ुद नह दीगरे दर कूए दोस्त।

कि यदि तुमने अपने दिल में प्रभु को पाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, तो एक क़दम अपने मन पर रखो, उसे स्थिर करो, दूसरा क़दम जो उठाओगे, वह प्रभु की गली में पहुँच जाएगा। मन का रुख़ बदलने का सवाल है। यदि वह देह के साथ, इंद्रियों के साथ लग गया, तो ज़मीनी बन गए। अगर उसकी दिशा आत्मा की ओर कर दो तो रूहानी (आध्यात्मिक) बन गए। अब मन की हालत क्या बनी पड़ी है? उसमें हर वक़्त वेग उठ रहे हैं, लहरें उठ रही हैं– कभी काम की, कभी क्रोध की, कभी लोभ, मोह, अहंकार की। पानी खड़ा हो, तभी उसमें अक्स पड़ेगा ना!

जिचरु इहि मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अह्मकारु।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु।।

– आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1247)

जिसने रस लेना था उसका, वह तो बाहर फैलाव में जा रहा है। इंद्रियों के घाट पर बाहर खिंचा फिरता है। कभी कान की इंद्री सुरीले रागों में, कभी आँख की इंद्री सुंदर दृश्यों में खेंचकर ले जाती है। बाहर देख–देखकर, सुन–सुनकर, इंद्रियों के घाट के स्वाद ले–लेकर हृदय का भंडार जो है, अवचेतन मन का, वह भरा पड़ा है। बाहर से हटे, तो अपने–आपका होश आए और उसका (आत्म–तत्व का) अनुभव पा जाए।

बाहर फैलाव का कारण क्या है? यह इन्द्रियाँ। इंद्रियों को खेंचने वाला कौन है? इच्छाएँ, कामनाएँ, बाह्य जगत के पदार्थ। तो महापुरुषों ने मूलभूत सिद्धांत को लिया कि कामनाविहीन हो जाओ। दसम गुरु साहिब, महात्मा बुद्ध और अन्य सभी महापुरुषों ने इस बात पर ज़ोर दिया। इच्छाएँ नहीं होगीं, तो मन बाहर कहाँ जाएगा? अतः जैसे पहले कहा गया, जब तक इंद्रियाँ दमन न हों, मन खड़ा न हो, बुद्धि भी स्थिर न हो, आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। प्रभु को कौन देख सकता है?

एवडु ऊचा होवै कोइ।। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी 24, पृ॰5)

वह परमात्मा अति सूक्ष्म और अगम है। हम भी वैसे ही सूक्ष्म और अगम हों, तभी उसको देख सकेंगे न! जब तक उस गति को नहीं पाते, उसे देख नहीं सकते। हवा में हमें अब कुछ नहीं दिख रहा। क्या हवा में कुछ नहीं? है। दिखता नहीं, क्योंकि वह सूक्ष्म है, हमारी आँख स्थूल है। अब या तो हमारी आँख उतनी सूक्ष्म हो, जितनी सूक्ष्म हवा है या हवा में जो कुछ है इतना स्थूल हो जाए, बड़ा हो जाए कि हमारी आँख की पकड़ में आ जाए, तभी हम उसको देख सकेंगे। Microscope अर्थात सूक्ष्मदर्शी यंत्र, जो एक चीज़ को सात–सौ गुणा बड़ा करके दिखाता है, उससे देखो, तो हवा में कीड़े–मकोड़े भरे हुए दिखाई देते हैं, जो अब नज़र नहीं आते।

एहु सरीरु सभ मूलु है माइआ।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1065)

माया कहो, भूल कहो, उसका मूल कारण यह शरीर है। बाल–बच्चे, इष्ट–मित्र, नाती–संबंधी और सारे कार्य–व्यवहार देह करके हैं न! यह पाँच तत्वों का शरीर जड़ है। हमारी सुरत, आत्मा, मन के साथ लगकर, बाहर जड़–पदार्थों का रूप बनकर चैतन्यता का आत्मघात कर रही है। चेतन–स्वरूप आत्मा जड़ के साथ लगी, तो जड़ता को पाएगी न! कहाँ जाएगी? जहाँ चैतन्यता कम है, नीची योनियों में। इंसान योनि में चैतन्यता को बढ़ाना था। महापुरुष कहते हैं :

दुलभ देह पाई वडभागी।। नामु न जपहि ते आतम घाती।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰188)

और,

नदरी आवै तिसु सिउ मोहु।।
किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहि।।

– आदि ग्रंथ (बिलावलु म॰5, पृ॰801)

अर्थात जो कुछ हमें नज़र आ रहा है, उसके साथ हमारा मोह बन गया। ये सारी चीज़ें बदल जाने वाली हैं, जो नाशवान पदार्थों में लग रहा है, वह तुझको कैसे पा सकता है?

कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु।।
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰468)

इस भूल से निकलना है। यह मानव जन्म इसलिए मिला था कि इसमें आकाश तत्त्व प्रबल होने के कारण यह सत्य–असत्य का निर्णय कर सकता है। शरीर जो असत्य है, नाशवान है, उससे फ़ायदा उठाकर आत्मा को, जो सत्य है, शाश्वत है ,जान सकता है। किंतु मन के साथ लगकर आत्मा स्वयं असत्य का, देह और जगत का रूप बन गई। 'कूड़' पंजाबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है, असत्य या नश्वर।

हम परमात्मा को कैसे पा सकते हैं?

वह परमात्मा बाह्य दृष्टि का विषय नहीं। बाइबिल में आया है :

'The kingdom of God cometh not with observation…
the kingdom of God is within you.'

- Holy Bible (Luke 17:20-21)

अर्थात ख़ुदा की बादशाहत बाहर दृष्टि का मज़मून नहीं। वह तुम्हारे अंदर हैं। इस वक़्त हम इंद्रियों के घाट पर बैठे हुए हैं। साधन वह कर रहे हैं, जिनका संबंध इंद्रियों के घाट से है। पढ़ना–लिखना–विचारना, जप–तप–संयम, तीर्थ–व्रत, हवन–दान, पूजा–पाठ, कीर्तन आदि– ये सारे साधन जो इंद्रियों के घाट पर किए जाते हैं, अपरा–विद्या से संबंध रखते हैं। वह सत् वस्तु अदृष्ट और अगोचर है, बाह्य दृष्टि का विषय नहीं। इंद्रियों के घाट से ऊपर आकर इसकी क, ख शुरू होती है। अपरा–विद्या के साधन भूमि की तैयारी के लिए हैं। शुभ कर्म हैं, शुभ फल मिलेगा, पर

आना–जाना ख़त्म नहीं होगा। जब तक इंद्रियों के घाट से ऊपर आकर आत्म–तत्त्व का बोध न हो, यह एहसास न जागे कि प्रभु कर रहा है, मैं नहीं कर रहा, तब तक आना–जाना ख़त्म नहीं होता। आत्म–तत्त्व का बोध तभी होगा जब बाहर से हटे, अंतर्मुख हो। अतः एमरसन ने कहा, 'Tap-in-side,' अर्थात अंतर खोजो। सारे बुद्धि–विचार और सिद्धांत जहाँ समाप्त हो जाते हैं, वहाँ से अध्यात्म की शुरूआत हाती है। फ़िलासफ़ी का संबंध सिद्धांत से है, आत्म–ज्ञान या परा–विद्या अनुभव का विषय है, सत् वस्तु से जुड़ने का। इसका अनुभव कहाँ खुलता है? स्थूल देह से, इंद्रियों के घाट से ऊपर आकर।

चूं ज़ हिस्स बेरूं नयामद आदमी,
बाशद अज़ तस्वीरे-ग़ैबी अअज़मी।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.106)

अर्थात जब तक इंद्रियों के घाट से ऊपर न आओ, सत् वस्तु की झलक नहीं मिलती। इसलिए प्रार्थना की :

ऐ ख़ुदा बेगुमार क़ौमी रूहमन्द,
ता जे संदूके बदने मान वाख़रंद।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 6)

कि हे प्रभु! दयाल महापुरुषों को भेज, जो देह के इस जादू भरे संदूक से मेरी आत्मा को बाहर लाएँ। अनुभवी पुरुषों की शिक्षा–दीक्षा का आरंभ यहीं से होता है। वह पहले दिन ही सामने बिठाकर अपनी तवज्जोह का उभार देकर सुरत को स्थूल देह से ऊपर लाकर सत्य से जोड़ देते हैं। परमात्मा को देखना है, आत्मा ने। इस वक़्त यह इंद्रियों के घाट पर इतनी लम्पट हो गई है कि देह का, जगत का रूप बन चुकी है। यह अपने आपको भूल गई, जीवनाधार परमात्मा को भूल गई। हरेक अंश अपने अंशी की ओर जा रहा है। मिट्टी के ढेले को कितना भी ज़ोर से ऊपर फेंको, वह फिर भूमि पर आकर रहेगा, क्योंकि उसका स्रोत मिट्टी है। दीपक की लौ को उल्टा भी कर दो, तो भी उसका रुख़ ऊपर ही रहेगा, क्योंकि उसका स्रोत– सूर्य, ऊपर है। आत्मा उस महाचैतन्य प्रभु की अंश है, वह (प्रभु) सिंधु है, तो यह उसकी बिंदु है। परंतु बिंदु मिट्टी में ऐसी मलियामेट हो रही है कि उसे यह भी होश नहीं रहा कि वह मिट्टी नहीं, बूंद है पानी की। मिट्टी

से निथरकर, अलग होकर, बूंद पहले बूंद बने तो बेअख़्तियार वह अपने अंशी, सागर की ओर जाएगी। यह बुद्धि–विचार का, फ़िलॉसफ़ी का विषय नहीं, practical self-analysis का अर्थात स्थूल देह से ऊपर आने का, जड़–चेतन की गाँठ खोलने का विषय है।

संत-मत क्या है?

संतों की तालीम परंपरा से चली आ रही है और वह प्रभु को पाने का सीधा रास्ता बताती है। दुनिया सारी भावना या भावावेश या बुद्धि–विचार से निष्कर्ष निकालकर सत्य को प्राप्त करने का यत्न करती है। संत–मत देखने का मार्ग है। संत जब भी दुनिया में आए, उन्होंने जो देखा, वही बयान किया। और वह सारा बयान एक है। *"देखे का मत एक।"* संत–मत की शिक्षा के तीन आधार हैं : 1. सत्गुरु, 2.सत्संग और 3. सत्नाम, जिनकी व्याख्या आगे आ रही है।

सत्गुरु कौन है?

यह कोई नया सवाल नहीं। सिद्धों ने गुरु नानक साहिब से पूछा,

तेरा कवणु गुरू जिस का तू चेला।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰942)

उन्होंने जवाब दिया,

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰943)

अर्थात 'शब्द', जो जगन्नियंता है, सबका पैदा करने वाला है, वह गुरु है, मेरी सुरत चेला है। यही सवाल कबीर साहिब से पूछा गया :

गुरु तुम्हारा कहां है, चेला कहां रहाय।
क्यों करके मिलना भया, क्यों बिछड़े आवे जाय।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (गुरुदेव का अंग 57, पृ.5)

उन्होंने जवाब दिया :

गुरु हमारा गगन महं, चेला है घट माहे।
सुरत शबद मिलना भया, बिछुड़त कबहूं नाहे।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (गुरुदेव का अंग 58, पृ.5)

कि 'शब्द' (हमारा गुरु) गगन में है और चेला, सुरत, घट में है। सुरत और 'शब्द' का जब मेल हो गया, तो बिछुड़ने का सवाल नहीं रहा। भाई गुरदास कहते हैं :

सबद गुरु गुरु जाणीऐ गुरमुखि होइ सुरति धुनि चेला।।
— वारां गिआन रतनावली (7:20)

तुलसी साहिब ने फ़रमाया :

सुरति सिष्य सब्दै गुरू, मिलि मारग जाना हो।
लखि अकास औंधा कूआँ, ता में सुरति समाना हो।
— घट रामायण, भाग 2 (पृ॰176)

अर्थात आत्मा शिष्य है। सिर का यह उल्टा कुआँ जो है, यहाँ आकाश या गगन है। पिंड से, स्थूल देह से, ऊपर उठकर गगन में आओ, तो सुरत–शब्द का मेल होता है; सुरत शब्द में समा जाती है। तो गुरु 'शब्द' है। जिसके अंतर वह 'शब्द' अर्थात करन–कारन प्रभु–सत्ता प्रकट हो, उसे भी हम गुरु कहते हैं। ईशु मसीह ने फ़रमाया :

'And the Word was made flesh, and dwelt among us.'
- John 1:14

अर्थात वह 'शब्द' सदेह हो गया और हम मनुष्यों के बीच आकर रहा। गुरुवाणी में आता है :

गुर महि आपु समोइ सबदु वरताइआ।।
— आदि ग्रंथ (मलार वार म॰1, पृ॰1279)

अर्थात गुरु में वह परमात्मा आप बैठकर जीवों को अपने साथ जोड़ता चला जाता है। वह परमात्मा जिसका कोई भाई नहीं, बंधु नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, साथी नहीं, जोड़ नहीं, उसके साथ कौन जोड़ सकता है? कहना पड़ेगा कि वह प्रभु, जिस घट में वह प्रकट है, उसमें बैठकर आप ही जीवों को अपने साथ जोड़ता चला जाता है। वास्तव में वह परमात्मा ही गुरु है।

साध रूप अपना तनु धारिआ।।
— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1005)

जिस मानव घट में वह प्रभु प्रकट है, वह स्वयं जुड़ा है, तुम्हें भी प्रभु से जोड़ देगा। गुरु के तीन दर्जे हैं। एक तो सर्वव्यापक परिपूर्ण स्वरूप है उसका,

सतिगुरु रहिआ भरपूरे।।
– आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰922)

जो सबमें भरपूर हो रहा है। फिर जब नीचे मंडलों में आता है, तो उसको 'गुरुदेव' कहते हैं अर्थात दिव्य–रूप गुरु, 'Radiant Form of the Master' और जो बाहर देह में बैठा है, उसको 'देह–गुरु' कहते हैं। वह अध्यापक की तरह समझाने–बुझाने का काम करता है, प्यार से समझाता है, हमदर्दी करता है, ढाढस देता है, कभी आँसू भी बहाता है। ये तीन दर्जे हैं, गुरु के। वास्तव में एक ही ताक़त के विभिन्न रूप हैं– जैसे बर्फ़, पानी और भाप। बर्फ़ तो एक रूप है। पिघली तो पानी बन गया, पानी की भाप बन गई। मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं,

गुफ़्त पैग़म्बर किह् हक़ फ़रमूदा अस्त,
मन नगुंजम हेच दर बाला ओ पस्त।
– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.282)

अर्थात पैग़ंबर साहिब कहते हैं कि प्रभु ने मुझसे कहा है कि मैं ऊँचाइयों में और निचाइयों में नहीं समा सकता। आगे कहते हैं कि ज़मीन और आसमान में और अर्शों पर भी मेरे समाने लायक़ जगह कोई नहीं।

दर दिले-मोमिन बगुंजम ऐ अजब,
गर मरा ज़ूई दरा दिलहा तलब।
– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.282)

मगर हैरानी की बात है कि मैं मोमिन अर्थात प्रभु भक्त के हृदय में समा जाता हूँ। मुझे ढूँढना चाहो, तो उसके पास जाओ। जिस हृदय में वह प्रभु प्रकट है, वही उससे मिला सकता है न! गुरु अर्जन साहिब ने इसीलिए कहा :

हरि जीउ नामु परिओ रामदासु।।
– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰5, पृ॰612)

कि हरि का नाम ही रामदास है। इसी संदर्भ में आता है :

चूं किह् करदी ज़ाते-मुर्शिद रा क़बूल,
हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल।

— किताब–उल–बैअत (पृ.8)

अर्थात जब पूरा गुरु मिल गया, तो ख़ुदा और रसूल (प्रभु और प्रभु का संदेश देने वाला) दोनों उसमें आ गए। गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं :

जिनि तुम भेजे तिनहि बुलाए सुख सहज सेती घरि आउ।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰678)

कि जिसने तुम्हें भेजा है, वही तुम्हें बुला रहा है कि अपने घर चलो। शम्स तबरेज़ साहिब कहते हैं :

आँ पादशाहे-आज़म दर बस्ता बूद मुहकम,
पोशीद दल्क़े-आदम यानी किह् बर दर आमद।

— दीवाने–शम्स तबरेज़ी (पृ.136)

अर्थात उस मालिक ने, प्रभु ने दरवाज़े को मज़बूती से बंद कर रखा था। वही अब इंसानी शक्ल अख़्त्यार कर दरवाज़ा खोलने के लिए आ गया है।

स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज फ़रमाते हैं :

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में। गुरु होय जीव चिताय।।

— सार बचन, पद्य (बचन 1, शब्द 2)

अर्थात वह प्रभु मानव शरीर धारण कर जीवों को निकालने के लिए आ गया है :

दस्ते-ऊ दस्ते-ख़ुदा चश्मे-ऊ मस्ते-ख़ुदा।

— दीवाने–शम्स तबरेजी़ (पृ.116)

उसका हाथ परमात्मा का हाथ है, उसकी आँखे प्रभु के नशे में मस्त हैं।

गुफ़्ताए-ऊ गुफ़्ताए-अल्लाह बुवद, गरचिह् अज़ हल्क़ूमे अब्दुल्ला बुवद।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.213)

अर्थात उसका कथन परमात्मा का कथन है, यद्यपि आवाज़ इंसानी गले से आती मालूम होती है। बुल्लेशाह साहिब कहते हैं :

मौला आदमी बण आइआ।। ओह आइआ जगत जगाइआ।।

कि वह प्रभु मानव देह धारण कर दुनिया को जगाने आ गया है। पीपा साहिब इसी संदर्भ में कहते हैं :

पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होइ लखावै।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी तृलोचन, पृ॰695)

अर्थात वह प्रणव की ध्वनि (शब्द या नाम) परम तत्त्व है। सत्गुरु बनकर वह प्रभु उसका साक्षात्कार जीवों को कराता है। गुरु अर्जन साहिब इस विषय का और भी स्पष्टिकरण करते हैं :

सतगुरु निरंजनु सोइ।। मानुख का करि रूपु न जानु।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰895)

हरि का सेवकु सो हरि जेहा।। भेदु न जाणहु माणस देहा।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1076)

अर्थात हरि का सेवक हरि ही है, उसे इंसान न समझो। कबीर साहिब कहते हैं :

ब्रह्म बोले काया के ओले। काया बिना ब्रह्म क्या बोले।

अर्थात वह समझाने–बुझाने के लिए हमारी तरह मानव रूप धारण कर आ जाता है। श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज इस प्रसंग में रूस के सम्राट पीटर दि ग्रेट[27] का उदाहरण प्रस्तुत करते थे, जो कि जहाज़–निर्माण करने की कला सीखने हॉलैंड गया और वहाँ मज़दूरों में मज़दूर बनकर काम करता रहा। वहाँ से रूस के निर्वासितों को समझा–बुझाकर अपने साथ लाया कि बादशाह मेरा परिचित है, मैं तुम्हारी सिफ़ारिश कर दूँगा। उन्हें क्या मालूम कि वह स्वयं बादशाह से बात कर रहे हैं! इसी संदर्भ में रानी इंदुमती का दृष्टांत सामने आता है– वह कबीर साहिब की शिष्या थी। जब वह साधना करके सतलोक पहुँची, तो देखा सत्पुरुष के स्थान पर कबीर साहिब बैठे थे। कहने लगी, आप वहीं दुनिया में बता देते कि आप ही सत्पुरुष हैं, तो क्या अच्छा होता! फ़रमाने लगे, उस वक़्त तुझे विश्वास न होता। शिष्य को सत्गुरु की पूरी पहचान नहीं होती, जब तक अंतर दिव्य–मंडलों में जाकर उसकी शान को न देख ले। अतः हुज़ूर बाबा

27. पश्चिम की यात्रा के दौरान महाराज कृपालसिंह जी ने जर्मनी में ज़ार पीटर दी ग्रेट के हाथों बना एक जहाज़ का मॉडल देखा था।

सावनसिंह जी महाराज फ़रमाया करते थे, "मुझे भाई समझ लो, मित्र समझ लो, अध्यापक समझ लो, पिता समान समझ लो। मेरे आदेशानुसार चलो अंतर, घट में प्रवेश करो। अंतर दिव्य–मंडलों में जाकर गुरु की शान को देखकर जो चाहे मुझे कह लेना।"

गुरु की ज़रूरत

जब तक प्रभु में अभेद सत्स्वरूप महापुरुष न मिले, प्रभु नहीं मिलता। ऐसे कार्य, जिनका संबंध इंद्रियों के घाट से है, उन्हें सिखाने के लिए भी किसी माहिर की, सिद्धहस्त व्यक्ति की ज़रूरत है। एक ऐसी विद्या को सीखना हो, जो इंद्रियों के घाट से ऊपर का ज्ञान है, उसके लिए अनुभवी गुरु की आवश्यकता क्यों न होगी? आत्म–विद्या को पाने के लिए किसी ऐसे मार्गदर्शक की ज़रूरत है, जिसने आत्मानुभव को पाया है, जड़–चेतन की गाँठ को खोलकर जीवन के रहस्य का उद्घाटन किया है। तुलसी दास जी ने इसीलिए कहा :

गुर बिन भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।

– रामचरितमानस (उत्तरकांड दोहा 93, चौपाई 3)

गुरु के बिना कोई भवसागर को पार नहीं कर सकता, यद्यपि वह शंकर जैसा बुद्धि का पहलवान ही क्यों न हो। फिर कहते हैं :

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

– रामचरितमानस (बालकांड सोरठा 5)

अर्थात गुरु के चरणों को नमस्कार है। वह दया का सागर है, मानव के रूप में स्वयं परमात्मा है। उसके वचन सूर्य की किरणों के समान मोह के महान अंधकार का नाश करने वाले हैं। तुलसी साहिब फ़रमाते हैं :

राम कृष्ण ते को बड़ा, तिनहूं भी गुरु कीन,
तीन लोक के नायका, गुरु आगे आधीन।

राम और कृष्ण से बड़ा कौन होगा? त्रिलोकीनाथ थे। परंतु गुरु के आगे नतमस्तक थे। गुरुवाणी में आया है :

मत को भरमि भुलै संसारि।। गुरु बिनु कोइ न उतरसि पारि।।
– आदि ग्रंथ (गोंड म॰5, पृ॰864)

और,

बिनु गुर नामु न पाइआ जाइ।। सिध साधिक रहे बिललाइ।।
– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰115)

बड़े साफ़ शब्द हैं। मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं :

पीर रा बगुज़ीं किह् बे पीर ईं सफ़र,
हस्त बस पुर आफ़तो-ख़ौफ़ो-ख़तर।
हर किह् ऊ बे दर मुर्शिदे दर राह शुद,
ऊ ज़-गूलाँ गुमरह ओ दर चाह शुद।
गर न बाशद साया-ए पीर ऐ फ़ुज़ूल,
पस तुरा सरगशता दारद बांगे-गूल।
ग़ूलत अज़ रह अफ़गनद अन्दर गज़ंद,
अज़ तू दाही तर दरीं रह बस बुदंद।
– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.308-309)

अर्थात गुरु को ढूँढ, बिना गुरु के यह मार्ग आफ़तों और ख़तरों से भरा पड़ा है। बिना गुरु के रास्ता ठीक तय नहीं होगा, शैतान अर्थात काल तुम्हें पथभ्रष्ट कर देगा। आगे कहते हैं :

हर किह् ख़्वाहद हमनशीनी बा ख़ुदा, गो नशीनद दर हुज़ूरे-औलिया।
– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.209)

जो परमात्मा के साथ बैठना चाहता है, वह प्रभु–प्राप्त महापुरुषों की संगति करे।

मर्दे-हज्जी हमरही हाजी तलब, ख़्वाह हिन्दू ख़्वाह तुर्क ओ या अरब।
मंगर अन्दर नक्शो अन्दर रंगे ऊ, बिंगर अंदर अज़्मे ऊ आंहगे ऊ।
– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.304)

अर्थात यदि तुम्हें हज की ख़्वाहिश है, तो किसी हाजी को, जिसने हज किया है, साथ ले लो। वह किसी भी जाति, धर्म या समाज से संबंध रखता हो, अनुभवी होना चाहिए। मीराबाई रानी थी, रविदास जी के पास गईं, जो जूते गाँठने का काम करते थे।

बिनु सतिगुर हरि नामु न लभई लख कोटी करम कमाउ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰40)

इंसान का उस्ताद इंसान ही हो सकता है। वेद–शास्त्रों में ऐसे पूर्ण पुरुषों की वाणियाँ हैं, जिनके अंदर प्रभु प्रकट था। भाई गुरदास जी कहते हैं :

बेद ग्रंथ गुरु हट है, जिस लग भवजल पार उतारा।।
सतिगुर बाझ न बुझीऐ जिच्चर धरे न प्रभु अवतारा।।

– भाई गुरदास, वारां गिआन रतनावली (1:17)

सत्गुरु के बग़ैर वह पहचाना नहीं जा सकता। सत्गुरु हमारी ही तरह इंसानी शक्ल रखता है। बचपन ही से हमें अध्यापकों की ज़रूरत पड़ती है। पहले गुरु हमारे माता–पिता, भाई और बहन हैं। फिर पढ़ाई के वक्त अध्यापकों की आवश्यकता है। हरेक इल्म को सीखने के लिए किसी उस्ताद की ज़रूरत है। प्रभु को पाने के लिए भी किसी ऐसे पुरुष की ज़रूरत है, जिसने उसको पाया है। इस शरीर में प्रभु का निवास है। इसमें हम भी बस रहे हैं, परंतु हमारी सुरत बाहर फैलाव में जा रही है। यह बाहर से कैसे हटे? इंद्रियों का घाट कैसे छोड़े, अपने आपको कैसे जाने, कैसे प्रभु का अनुभव प्राप्त करे? स्वाध्याय से रुचि बनेगी, प्रेरणा मिलेगी। परंतु सत्य का साक्षात्कार करने के लिए किसी ऐसे अनुभवी महापुरुष की ज़रूरत है, जो हमारी फैली हुई सुरत को इंद्रियों के घाट से ऊपर लाए और अंतर में उसका व्यक्तिगत अनुभव दे। श्री गुरु अमरदास जी कहते हैं :

भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ।।
पूछहु ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰59)

फिर फ़रमाते हैं :

धुरि खसमै का हुकमु पाइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़ा वार म॰4, पृ॰556)

बड़ा स्पष्ट कथन है। छांदोग्य उपनिषद्, चतुर्थ अध्याय में आता है :

श्रुतँह्येव मे भगवद्दशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं

प्रापतीति तस्मै हेतदेवोवाचात्र ह न किंचन वीयायेति

– छांदोग्य उपनिषद् (IV.ix.3)

"भद्र पुरुषों से, जो गुरु के समान हैं, सुना है कि गुरु की दीक्षा के बिना हम अपनी वास्तविकता को अनुभव नहीं कर सकते।" इसी प्रकार गीता के चौथे अध्याय में आता है :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

– श्रीमद्भगवद्गीता (4.34)

"यदि तुम प्रभु को पाना चाहते हो, तो ऐसे महात्मा के पास जाओ, जो अंतर में परमात्मा का दर्शन करते हैं।" जो देखता है, वही दिखा सकता है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (गुरुदेव का अंग 10)

शुक्राना है गुरु का, वरना गुरु में भी तो वही गोविंद ही है, मिलाने वाला। मतलब साफ़ है कि जब तक प्रभु में अभेद महापुरुष न मिले, प्रभु को हम नहीं मिल सकते। सहजोबाई ने इसीलिए गुरु और हरि की तुलना करते हुए गुरु का महत्त्व अधिक बताया है और कहा है,

राम तजूं पै गुरु न बिसारूं। गुरु के सम हरि को न निहारूं।।

आगे कहती हैं :

हरि ने जन्म दियौ जग माहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं।।
हरि ने पांच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा।।
हरि ने कुटंब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी।।
चरनदास पर तन मन वारूं। गुरु न तजूं हरि कूं तज डारूं।।

– सहजो बाई की बानी (हरि तें गुरु की बिशेषता)

गुरु क्या उपदेश देता है?

गुरु उपदेश देता है कि ए इंसान! तू चेतन–स्वरूप आत्मा है। तेरा असली देश महाचैतन्य प्रभु का धाम है। हे आत्मा! तू अपने घर चल। तू

मन–इंद्रियों के घाट पर देह और जगत का रूप बनी बैठी है, अपने असली घर को भूल चुकी है। स्वामी जी महाराज कहते हैं :

धाम अपने चलो भाई, पराए देश क्यों रहना।
काम अपना करो जाई, पराए काज क्यों फंसना।

– सार बचन, पद्य (बचन 19, शब्द 18)

यही मौलाना रूम कह रहे हैं :

अर्श अस्त नशेमने-तू शर्मत बादा,
काही ओ मुक़ीमे-ख़ाते ख़ाक शवी।

कि हे आत्मा! तू गगन की रहने वाली थी, कहाँ मिट्टी और पानी में फँसी पड़ी है। कबीर साहिब कहते हैं :

हंसा सुधि कर अपनो देसा।

ऐ आत्मा! तू हंस वृत्ति रखती है, सत्य–असत्य का निर्णय कर सकती है। अपने देश की सुधि कर। मन–इंद्रियों के घाट पर तू दुनिया में फँस गई। अब समय है कि तू अपने अंतर में प्रभु का प्यार बसा ले। जिसको देखा नहीं, जिसका सुख नहीं मिला, उसका प्यार कैसे हो सकता है? इसलिए, किसी सत्गुरु से उपदेश लो। आगे कहते हैं :

इहाँ आइ तोरी सुधि बुधि बिसरी, आनि फँसे पर देखा।
अबहूँ चेतु हेतु करु पिउ से, सतगुरु के उपदेसा।।

– कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2 (चितावनी शब्द 44, पृ.42)

वह परमात्मा तेरी आत्मा की आत्मा है, सत्गुरु वह आँख बना देगा जिससे वह नज़र आता है।

नानक सतिगुरु मिलै त अखी वेखै घरै अंदरि सचु पाए।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰3, पृ॰603)

इस देह में दस द्वार हैं।

नउ दुआरे परगट कीए दसवा गुपतु रखाइआ।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰922)

नौ द्वार हैं– दो आँखों के, दो कानों के, दो नासिका के, मुँह, गुदा और इंद्री। जब तक सुरत इन नौ द्वारों में भटकती रहेगी, वह प्रभु को नहीं पा सकती।

नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु अनूप न पाई।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी कबीर, पृ.339)

नउ दरवाज नवे दर फीके रसु अंमृतु दसवे चुईजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन असटपदीआ म॰4, पृ.1323)

दसवीं गली में आओ, वह पिंड से, स्थूल देह से, ऊपर जाने का रास्ता है, जिसको 'नुक़्ताए–सवेदा' कहकर मुसलमान फ़क़ीरों ने बयान किया है। योगी उसको 'शिव–नेत्र' कहते हैं। भगवान कृष्ण ने उसे 'दिव्य–चक्षु' कहा है। कबीर साहिब ने फ़रमाया :

लगाओ सुरति अलख स्थान पर, जाको रटत महेशा।

अर्थात अपनी सुरत को उस स्थान पर लगाओ, जो इंद्रियों के घाट से ऊपर है, जहाँ शिव (शंकर) भगवान भी ताड़ी लगाए बैठे हैं। शिव–नेत्र दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे है। यह रूह का, आत्मा का ठिकाना है, जहाँ से सारे शरीर को सत्ता मिलती है। यहीं से इद्रियाँ ताक़त लेती हैं। स्वामी जी महाराज कहते हैं :

बसो तुम आय नैनन में। सिमट कर एक यहँ होना।।

– सार बचन, पद्य (बचन 19, शब्द 18)

तुम जीते–जी सुरत को समेटकर आँखों के पीछे आ जाओ, जहाँ पर रूह मरकर पहुँचती है।

जीते-जी मरना क्या है?

अब सवाल पैदा होता है कि जीते–जी मरना क्या है? कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (जीवत मृतक का अंग 16, पृ.115)

मरता तो सारा जहान ही है। जब प्रारब्ध कर्मों का हिसाब ख़त्म होता है, तो जाना ही पड़ता है। वह मरना और है, अपनी इच्छा से मरना, ऐसी मृत्यु, जो अपने अधिकार में हो। जीते–जी पिंड को छोड़ने की यह विद्या संतजन संसार को सिखाते हैं, ऐसा मरना जिसमें अमर–जीवन की प्राप्ति

हो।

'Learn to die, so that you may begin to live.'

मरना सीख, ताकि तू जीने लग जाए, अमर-जीवन को तू प्राप्त कर ले।

— थॉमस आ कॅम्पिस ('In the Imitation of Christ')

सेंट प्लूटार्क इसी संदर्भ में कहता है :

'Those who are initiated into the mysteries of the Beyond, their soul has the same experience of leaving the body as it has at the time of death.'

जिनको अंतर की, जीते-जी मरने की, विद्या की दीक्षा मिली है, उनको जीते-जी जिस्म को छोड़ने का वही अनुभव होता है, जो मरते समय इंसान को होता हैं।

हक़ीम सनाई फ़रमाते हैं :

बमीर ऐ दोस्त पेश अज़ मर्ग, अगर मी ज़िंदगी ख़्वाही।

— दीवाने–सनाई (पृ.27)

यदि तू ज़िंदगी को हासिल करना चाहता है, तो मरना सीख। वह मरना क्या है? आगे फ़रमाते हैं :

नै चुनां मर्गे किह् दर गूरे रवी, बल्कि अज़ ज़ुलमत सुए नूरे रवी।
नै चुनां मर्गे किह् दर गूरे रवी, मर्ग-तब्दीली किह् दर नूरे शवी।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 6, पृ.86)

यह ऐसा मरना नहीं कि जो तुम्हें क़ब्र में ले जाए। यह वह मरना है, जो तुम्हें अंधेरे से प्रकाश में ले जाएगा। मनुष्य जीवन से पूरा फ़ायदा उठाना है, तो जा, जीते–जी मर।

कुरान शरीफ़ (2.143) में इसी मौत का इशारा है :

मूतु कबल अन्नमूतु

अर्थात मरने से पहले मर।

ईसा मसीह कहते हैं :

'Unless you lose this life, you cannot have everlasting life.'

जब तक तुम स्थूल देह और जगत के इस नश्वर जीवन को समाप्त नहीं करते अर्थात जीते-जी नहीं मरते, तब तक तुम हमेशा की जिंदगी को पा नहीं सकते।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 10:39)

संतों की शिक्षा–दीक्षा की क, ख यहीं से शुरू होती है।

जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहले जो मरै, अजर रु अम्मर होय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (जीवत मृतक को अंग 8, पृ.115)

बड़े साफ़ शब्द हैं। दादू साहिब कहते हैं :

दादू पहिली मरि रहै, पीछे तै सब कोइ।

— दादू दयाल की बानी, भाग 1 (जीवत मृतक को अंग, 23)

वे भी जीते–जी मरने का आदेश दे रहे हैं :

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰1, पृ॰730)

जीते–जी मरने की वह विद्या एक बाक़ायदा साइंस है, योग है, जिसकी शिक्षा–दीक्षा संतों के पास जाकर मिलती है। वह पहले ही दिन मरना सिखाते हैं और मृत्यु के भय से मुक्त कर देते हैं।

मरणै ते जगतु डरै जीविआ लोड़ै सभु कोइ।।

— आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार, म॰4, पृ.555)

सारा जहान मौत से डरता है। क्यों? दो कारण हैं। एक तो मरना नहीं आया। दूसरे, कहाँ जाना है, इसका पता नहीं। मरने के दारुण दुख को महापुरुषों ने विविध रूप से वर्णन किया है। हिंदू धर्मग्रंथों में आता है कि एक हज़ार बिच्छू इकट्ठा डंक मारे, तो जितनी पीड़ा होती है, उतनी पीड़ा मृत्यु के समय आत्मा को शरीर छोड़ने में होती है। मुसलमान फ़क़ीर कहते हैं कि जितनी तकलीफ़ काँटों वाली झाड़ी गुदा से डालकर मुँह से निकालने में होती है, उतनी तकलीफ़ मृत्यु के समय होती है। यह अनुमान दिए हैं। गुरुवाणी कहती है :

जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ।।

— आदि ग्रंथ (सलोक फरीद, पृ॰1377)

मृत्यु के इस दारुण दुख से बचने के लिए गुरु के पास जाओ।

गुर परसादी जीवत मरै मरि जीवै सबदु कमाइ।।
मुकति दुआरा सोइ पाए जि विचहु आपु गवाइ।।

– आदि ग्रंथ (मलार असटपदीआ म॰3, पृ॰1276)

गुरु वह आँख बनाता है, जिससे शिष्य देखने वाला बन जाता है कि परमात्मा कर रहा है, मैं नहीं कर रहा। वह प्रभु के हुक्म को बूझने, जानने वाला बन जाता है और अपनी इच्छा को प्रभु इच्छा में शामिल कर देता है।

नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी 1, पृ॰1)

जो हुक्म के जानने वाला हो गया, उसमें मैं–पना (अहंकार) नहीं रहता। यह अवस्था कहने–सुनने से परे है।

जीवत मरै तां बूझ पाइ।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰3, पृ॰602)

जीते–जी मरने से इस अनुभव को पा सकते हैं।

सतिगुरि मिलिऐ उलटी भई कहणा किछू न जाइ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰758)

गुरु कृपा से जीते–जी मरने से इंद्रियाँ उलटने लगती हैं।

गुर परसादी जीवत मरै हुकमै बूझै सोइ।।
नानक ऐसी मरनी जो मरै ता सद जीवणु होइ।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म॰4, पृ॰555)

अनुभवी पुरुष पहले दिन ही पिंड से ऊपर लाकर मौत के भय से आज़ाद कर देता है। रोज़–रोज़ के अभ्यास से यह निर्भय होकर पिंड को छोड़ने लगता है।

गुरमुखि आवै जाइ निसंगु।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰932)

कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनन्दु।।

मरने ही ते पाइऐ पूरनु परमानन्दु।।

– आदि ग्रंथ (सलोक कबीर, पृ॰1365)

पिंड को छोड़कर ही पूर्ण परम आनंद को पा सकते हैं।

उह रसु पीआ इह रसु नही भावा।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी कबीर, पृ॰342)

जब वह परम आनंद मिल जाए, तो इंद्रियों के घाट के सब रस फ़ीके पड़ जाते हैं। मौलाना रूम साहिब का जब अंत समय आया, तो फ़क़ीर हाल पूछने आए। दुआ करने लगे, ऐ ख़ुदा! इन्हें शफ़ा दे (राज़ी कर दे)। आँख खोलकर कहने लगे, "यह शफ़ा तुमको मुबारक हो। आगे कभी फ़ुरसत मिलती थी, तो जिस्म छोड़कर प्रभु की गोद में जाते थे और उस परम आनंद को लेते थे। यह शरीर मेरे और उसके बीच एक पर्दा था, जो अब हमेशा के लिए टूटने वाला है। क्या तुम नहीं चाहते कि यह पर्दा टूट जाए और मैं हमेशा के लिए उसमें लीन हो जाऊँ?" सत्गुरु पहले दिन पिंड से ऊपर लाकर जीते–जी मरना सिखाता है। वहाँ लाने के लिए ऐसे पुरुष की ज़रूरत है, जो सुरतिवंत हो, जो महान सुरत अर्थात परमात्मा का मुख बना हो। वह हमारी सुरत को जो मन–इंद्रियों के घाट पर फैलाव के कारण जिस्म और जगत का रूप बनी पड़ी है, दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे लाकर अंतर की आँख खोले।

खैंचे सुरत गुरु बलवान।

– सार बचन, पद्य (बचन 8, शब्द 17)

जो यह अनुभव दे सकता है, ऐसे समर्थ पुरुष की ज़रूरत है। वह तुम्हें इंद्रियों के साधनों में नहीं लगाए रखता, वरन् शरीर रूपी हरिमंदिर से ऊपर आने का अर्थात द्विज या दोजन्मा बनने का अनुभव देता है। पिंड से ऊपर आकर ही आगे अंड, ब्रह्मंड और उसके पार सतलोक (सचखंड) जाने का रास्ता खुलता है।

द्विज या दोजन्मा किसको कहते हैं?

द्विज, दोजन्मा या 'Twice born' होना क्या है? एक तो इस शरीर में जन्म लिया। दूसरा इससे ऊपर उठकर, जीते–जी मरकर एक नई दुनिया

में जन्म लेना है। यह है, द्विज या दोजन्मा बनना। ईसाइयों में इसे 'Twice born, to be born anew' कहा है। ईशु मसीह ने कहा :

'The kingdom of God cometh not with observation... the kingdom of God is within you.'

- Holy Bible (Luke 17:20-21)

खुदा की बादशाहत बाह्य-दृष्टि का विषय नहीं। वह तुम्हारे अंतर में है।

कैसे उसे पा सकते हैं? फ़रमाते हैं :

'Except a man be born again, he cannot see the kingdom of God.'

- Holy Bible (John 3:3)

जब तक तुम दोजन्मा नहीं बनते, स्थूल देह के इस जीवन से ऊपर उठकर एक नई दुनिया में जन्म नहीं लेते, तुम ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िल नहीं हो सकते।

हिंदुओं में दोजन्मा बनाने का रिवाज़ चला आता है। उसके लिए गायत्री मंत्र देते हैं। फ़र्क़ यही है कि पुराने समय में इसका अनुभव देते थे कि *'तत् सवितुर् वरेण्यम्'* अर्थात ब्रह्म को अपने अंतर में धारण कर लो, व्याप्त कर लो और उसका स्वरूप हो जाओ। आजकल लकीर की फ़क़ीरी रह गई है। अनुभव नहीं देते, उसका साक्षात्कार नहीं कराते।

श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज फ़रमाते थे कि सिक्ख या शिष्य सही मा'नों में तभी बनता है, जबकि अंतर में गुरु प्रकट हो और बातें करे। यह तभी होगा, जब अंतर में सूर्य, चंद्रमा, तारामंडल को पार कर आगे नई दुनिया में जाग उठे, तभी गुरुदेव अर्थात दिव्य–रूप गुरु के चरणों में पहुँचता है। हुज़ूर महाराज के इस सारगर्भित कथन में यह संकेत छिपा है कि संतों की शिक्षा–दीक्षा की शुरूआत 'दोजन्मा' बनने से होती है, अंतर गुरु–स्वरूप का अनुभव तभी होता है। 'नाम' का परिचय भी स्थूल देह से ऊपर आकर ही मिलता है। पिंड से ऊपर आने का व्यक्तिगत अनुभव तो दीक्षा के समय ही हरेक को मिल जाता है। जो गुरु–स्वरूप को अंतर मे साक्षात्कार कर ले, वह शिष्य बन गया। बाक़ियों को फ़रमाते थे कि

तुम अभ्यास करके गुरु को अंतर में प्रकट करो। 'नाम' मिलने भर से तुम सत्संगी नहीं बन गए। शिष्य बनने के लिए सत् की थोड़ी पूँजी तुम्हें दी गई है। सच्चे मा'नो में शिष्य तभी बनोगे, जब अंतर में गुरु को प्रकट कर लोगे और वह बातें करेगा। गुरु नानक साहिब से सिद्धों ने बातचीत के दौरान पूछा कि तेरा जन्म–मरण कब ख़त्म हुआ? तो जवाब दिया :

सत्गुरु कै जनमे गवनु मिटाइआ

– आदि ग्रंथ (सिध गोसटि, रामकली म॰1, पृ॰940)

अर्थात! पिंड से ऊपर उठकर हमने सत्गुरु के घर जन्म लिया, तो आना–जाना हमेशा के लिए ख़त्म हो गया।

गुरु क्या करता है?

सारी दुनिया प्रभु का सुमिरन कर रही है, अपने–अपने तरीक़े से। कोई 'राम–राम' कहता है, कोई 'वाहेगुरु'। अनेकों नाम हैं, उसका बोध कराने के लिए। गुरु उसका परिचय, व्यक्तिगत अनुभव देता है, जिसके यह नाम हैं।

बेगि मिलावैं नाम से, इन्हैं मिलै जो कोय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (साध का अंग 83, पृ.123)

जो भी उनसे मिले– उसे राम से, जो घट–घट में रम रहा है, उससे जोड़ देते हैं, ज्योतिस्वरूप प्रभु से मिला देते हैं। 'गुरु' शब्द का अर्थ भी यही है, 'गो'–'रु', जो अंधेरे में प्रकाश करे। गुरु अमरदास साहिब फ़रमाते हैं :

गुरु ज्ञान अंजन सच नेत्री पाया, अन्तर चानन अज्ञान अंधेर गंवाया।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰124)

अर्थात गुरु ज्ञान का सुरमा अर्थात सच,

आदि सचु जुगादि सचु।। है भी सचु नानक होसी भी सचु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी, पृ॰1)

आँखों में डालता है। अलंकार में वर्णन है। सुरमा आँखों में डाला जाता है न! वाणी का सार यह है कि गुरु सुरत को बाहरी फैलाव से हटाकर, इंद्रियों के घाट से ऊपर दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे लाता है, जिससे अंतर में

प्रकाश हो जाता है और अज्ञान का अंधकार दूर हो जाता है। पढ़ने–लिखने, विचारने का नाम ज्ञान नहीं, ज्ञान उस प्रभु को अनुभव करने का नाम है।

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰59)

'ज्ञान–ध्यान ध्वनि' का, 'नाद' का नाम है, जो अकथ है, कहने–सुनने से परे है। श्री गुरु नानक साहिब, गुरु की कसौटी प्रस्तुत करते हुए, फ़रमाते हैं :

सो गुरु करउ जि साचु दृड़ावै।। अकथु कथावै सबदि मिलावै।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म॰1, पृ॰686)

अर्थात उस गुरु को धारण करो, जो साच की प्रतीति करा दे। वह अकथ है, कहने–सुनने से परे है, परंतु हमको उसका अनुभव करा दे। श्री गुरु अमरदास जी साहिब पूर्ण गुरु की महिमा करते हुए कहते हैं :

सतिगुरु पूरा सबदु सुनाए।। अनदिनु भगति करहु लिव लाए।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1055)

अर्थात पूरा गुरु 'नाम' या 'शब्द' की ध्वनि हमें सुनाता है, निरंतर उसकी भक्ति में हमें लगा देता है। पलटू साहिब कहते हैं :

धुनि आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव।।

– पलटू साहिब की बानी, भाग 1 (गुरुदेव, कुंडलिया 5, पृ.6)

जो गगन से ध्वनि को सुना दे, उसका नाम 'गुरुदेव' है। श्री गुरु रामदास साहिब फ़रमाते हैं :

राम नाम कीरतन रतन वथु हरि साधू पासि रखीजै।।
जो बचनु गुर सति सति करि मानै तिसु आगै काढि धरीजै।।

– आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1326)

हीरे–जवाहरात से अनमोल निधि, अंतर्मुख 'नाम' और 'शब्द' की पूँजी, प्रभु ने साधु के पास रखी है। जो गुरु के वचनों पर फूल चढ़ाता है, उसका साक्षात्कार कर लेता है। कबीर साहिब कहते हैं :

साधो सो सत्गुरु मोहिं भावै।
परदा दूर करै आंखिन को निज दरसन दिखलावै।।

– कबीर शब्दावली, भाग 2 (सतगुरु महिमा, शब्द 2)

यह गुरु का काम है। गुरु वह है, जो सियाही के परदे को हटाकर अंतर्मुख ज्योति को अनुभव कराए। गुरु रामदास जी साहिब फ़रमाते हैं :

नामु अमोलकु रतनु है पूरे सतिगुर पासि।।
सतिगुर सेवै लगिआ कढि रतनु देवै परगासि।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰40)

और,

रतनु जवेहरु लालु हरि नामा गुरि काढि तली दिखलाया।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰4, पृ॰880)

अर्थात 'हरिनाम' का अमूल्य रत्न पूरे गुरु के पास है। जो उसको सेवने वाले हैं अर्थात उसकी आज्ञा पर चलते हैं, उनको उसका व्यक्तिगत अनुभव वह देता है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

साधु मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेक पारखी, सो माथे के मौर।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (बिबेक का अंग 2, पृ.144)

किसका आश्रय लेना चाहिए?

जिज्ञासु को किसका आश्रय लेना चाहिए? महापुरुषों ने इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर दिया है। मौलाना रूमी साहिब फ़रमाते हैं :

दामने-ऊ गीर ए यारे दलेर, कू मुनज़्ज़ा बाशद अज़ बाला ओ ज़ेर।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.45)

ऐ वीर पुरुष! किसी ऐसे का दामन पकड़, जो कि रास्ते के ऊँच–नीच से परिचित हो।

बा तू बाशद दर मकान ओ ला-मकां,
चूं बमानी अज़ सरा ओ अज़ दुकां।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.45)

जो लोक–परलोक दोनों में तुम्हारा साथ दे सके। गुरुवाणी में आया है :

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ।।
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि।।

– आदि ग्रंथ (मारू वार म॰5, पृ॰1102)

दुनिया के इष्ट–मित्र, नाती–संबंधी हद मृत्यु तक साथ देते हैं। यह घिड़कता मर जाता है, वे देखते रह जाते हैं। वह (समर्थ गुरु) उस वक़्त सामने आकर कहता है, मैं तेरे साथ हूँ। कहते हैं, ये कच्चे साथी हैं, जो जीते–जी छोड़ जाते हैं। किसी ऐसे मित्र को ढूँढ़, जो तुझको कभी न छोड़े।

सचा सतिगुरु सेवि सचु सम्हालिआ।।
अंति खलोआ आइ जि सतिगुर अगै घालिआ।।

– आदि ग्रंथ (मलार वार म॰1, पृ॰1284)

कहते हैं, सच्चे सत्गुरु के सेवक बनो, जो अंत समय सामने आ खड़ा होगा। हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महारात फ़रमाते थे कि सत्गुरु की संभाल देखनी हो, तो किसी मरते हुए सत्संगी को देखो।

गुरु की सामर्थ्य

श्री गुरु अमरदास जी साहिब फ़रमाते हैं :

इहु जगु अंधा सभु अंधु कमावै बिनु गुर मगु न पाए।।
नानक सतिगुरु मिलै त अखी वेखै घरै अंदरि सचु पाए।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰3, पृ॰603)

कहते हैं, यह सारा संसार अंधा है। सत्य को देखने वाली आँख नहीं बनी, सब अंधकार कर्म कमा रहे हैं। सत्गुरु आँख बनाता है, अंतर्मुख तत्व को देखने वाली। अंधा कौन है? गुरुवाणी कहती है :

अंध एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि।।
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि।।

– आदि ग्रंथ (रामकली वार म॰3, पृ॰954)

अंधे वे नहीं, जिनके चेहरे पर आँखें नहीं। अंधे वह हैं, जो अंतर में प्रभु को नहीं देख रहें। श्री गुरु अंगद साहिब कहते हैं :

अंधा सोइ जि अंधु कमावै तिसु रिदै सि लोचन नाही।।

– आदि ग्रंथ (मलार वार म॰1, पृ॰1289)

जो अंधकार कर्म कमाता है, जिसकी अंतर्दृष्टि नहीं खुली, वह अंधा है।

शम्स तबरेज़ी हज़ाराँ कोरे-मादिर ज़ाद रा,
यक नज़र अज़ रहमते-ख़ुद जुमला रा रह बीं कुनन्द।
— कुल्लीयाते–शम्स तबरेज़ (पृ.267)

शम्स तबरेज़ साहिब फ़रमाते हैं कि हमने हज़ारों जन्मजात अंधों को आँखें दे दीं, दयादृष्टि से उन्हें रास्ता देखने वाला बना दिया। यह अंतर्दृष्टि का, उसे शिव–नेत्र कहो, Single Eye कहो, नुक़्तए–सवेदा कहो, वर्णन है। गुरु देह में क़ैद नहीं। वह जब चाहे खंडों–ब्रह्मंडों में विचरता है, जब चाहे यहाँ धरती पर काम करता है। वह प्रभु से अभिन्न होता है, उसका व्यक्त स्वरूप होता है। वह साकार होकर भी निराकार है। वह जीवों के कल्याण के लिए देह धारण करता है। वह 'सदेह शब्द' है, सुख और शांति का अवतार है। सब ग्रंथ–पोथियाँ उसकी महिमा बखान कर रही हैं।

अपरंपर पारब्रहमु परमेसुरु नानक गुरु मिलिआ सोई जीउ।।
— आदि ग्रंथ (सोरठि म॰1, पृ॰599)

अर्थात मुझे वह गुरु मिला है, जो स्वयं पारब्रह्म परमेश्वर है।

सतिगुरु मेरा सदा सदा ना आवै न जाइ।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰759)

गुरु कैसा होता है?

गुरु हमारी तरह मानवीय आकार रखता है। उसका तन संसार में काम करता दिखता है, पर उसकी जान, आत्मा प्रभु से अभिन्न होती है। वह धरती से बंधा नहीं होता। उसकी आत्मा दिव्य–मंडलों में विचरती है।

तन मयाने ख़ल्क़ ओ जां नज़्दे ख़ुदावंदे जहाँ,
तन गिरफ़्तारे ज़मीन ओ रूह बर हफ़्त आसमां।
— दीवाने–ग़रीब नवाज़ (पृ.175)

इसीलिए कहते हैं :

औलिया रा बर क़यासे-ख़ुद मगीर,
गरचिह् मानद दर नविश्तन शेर ओ शीर।
— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.58)

जैसे 'शेर' और 'शीर' एक ही तरह लिखे जाते हैं, लेकिन दोनों में बड़ा अंतर है। एक फाड़कर खा जाने वाला हिंसक जंतु है, दूसरा आधार देने वाला दूध है। इसी तरह साधु भी हमारी तरह इंसान ही दिखता है, पर वह कुछ और भी है। उसको अपनी दृष्टि के स्तर से न देखो।

गुरुपद प्रभु की देन है

गुरु प्रभु का भेजा हुआ संसार में आता है, संसार के कल्याण के लिए, बिछुड़ी आत्माओं को परमात्मा से मिलाने के लिए।

कह कबीर हम धुर के भेदी लाए हुकम हजूरी।।

अर्थात हम धुर घर के भेदी हैं, मालिक का हुक्म लेकर आए हैं। दसम गुरु साहिब ने इस बात का इशारा दिया है कि हम दो से एक रूप हो गए थे। हमारा चित्त नहीं था यहाँ आने का, पर उस प्रभु ने,

जिउ तिउ प्रभ हम को समझायो।। इम किह कै लोकि पठायो।।

– दसम ग्रंथ (बचितर नाटक, पृ॰55)

और फ़रमाया,

मैं अपना सुत तोहि निवाजा।। पंथ प्रचुर करबे कहु साजा।।

– दसम ग्रंथ (बचितर नाटक, पृ॰57)

कि जा, तुझे मैं अपना पुत्र बनाकर भेजता हूँ (यह वर्णन पहले आ चुका है)। महापुरुषों ने जगह–जगह ऐसे संकेत दिए हैं :

समरथ का परवाना लाये, हंस चेतावन आये।।

– कबीर साहिब

कितना स्पष्ट कथन है! श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज ने भी प्रभु की ओर से भेजे जाने का ज़िक्र किया है। एक बार, रात का समय था। डॉक्टर जॉनसन और महाराज कृपालसिंह जी हुज़ूर के चरणों में बैठे थे। हुज़ूर ने मौज में आकर फ़रमाया, "जब हम दुनिया में आते हैं, तो अपना स्टाफ़ काम करने वाला साथ लाते हैं। जब एक जगह काम पूरा हो जाता है, तो दूसरी तरफ़ भेज दिया जाता है।"

गुरु की संभाल

हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज फ़रमाते थे कि गुरु जब 'नाम' देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है, और उस वक़्त तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक वह उसकी आत्मा को सत्पुरुष की गोद में न पहुँचा दे। इसी प्रसंग में फ़रमाते थे कि बाहर जंगलों, पहाड़ों, बियाबानों में हर जगह वह शिष्य के साथ है। मरकर या जीते–जी अंतर दिव्य–मंडलों में जाओ, तो वहाँ भी साथ रहकर मार्गदर्शन करता है। शिष्य छोड़ जाए, तो छोड़ जाए, गुरु नहीं छोड़ता। गुरुवाणी में आया है :

सो सतिगुरु पिआरा मेरै नाल है जिथै किथै मैंनो लए छडाई।।

– आदि ग्रंथ (वडहंस वार म॰4, पृ॰588)

अर्थात गुरु प्रीतम मेरे साथ है, जहाँ कहीं (माया) भिड़ पड़ती है, वह मुझे छुड़ा लेता है।

सफल मूरति गुरु मेरै माथै।। जत कत पेखउ तत तत साथै।।

– आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰535)

कहते हैं, गुरु हर वक़्त मेरे साथ हैं। जब भी मैं अंतर में, दो भ्रू–मध्य आँखों के पीछे देखता हूँ, वह मेरे साथ हैं। अंतर में न भी देखो, तो भी वह साथ हैं।

गुरु और शिष्य का रिश्ता बहुत गाढ़ा है, जिसकी मिसाल नहीं दी जा सकती। फिर भी महात्माओं ने समझाने का यत्न किया है। दुनिया के सारे रिश्ते स्वार्थ से बंधे पड़े हैं। गुरु का शिष्य से निःस्वार्थ नाता है, किसी गर्ज़ का नाता नहीं। माता और बच्चे के प्रेम के उदाहरण से इस रिश्ते को समझने में मदद मिल सकती है। बच्चे को जन्म देकर माता उसकी कितनी संभाल करती है! उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी होती है। बच्चे को अपना होश नहीं होता, भले–बुरे की, मैलेपन और सफ़ाई की पहचान नहीं होती। माता उसकी संभाल करती है। बच्चा दुखी हो, तो माता को चैन नहीं, उसका दुख दूर करने का यत्न करती है, सारी–सारी रात जागती है। बच्चा ख़ुश हो, तो माता का हृदय खिल उठता है। बच्चा मल–मूत्र में सन जाता है। माता को घिन नहीं आती, उसको साफ़ करके हृदय से लगा लेती है, अपना दूध पिलाती है, लोरियाँ देकर सुलाती है। बच्चा रात को

पेशाब कर दे, तो उसको सूखे में लिटाती है, आप गीले में पड़ी रहती है।

बच्चा जब तक अपने घराने की बोली समझने योग्य अवस्था को नहीं पहुँचता, तो माता उसकी आँखों में देखती है और इस प्रकार बेज़बानी की ज़बान से बच्चे को अपनी बोली समझने और बोलने योग्य बना देती है। बच्चे का लालन–पालन करने के साथ–साथ वह उसके बौद्धिक विकास में सहायता देती है, बुरे–भले का ज्ञान उसे देती है। ठीक इसी तरह, शिष्य जब सत्गुरु के घर जन्म लेता है (अर्थात दीक्षा या 'नाम' लेता है), तो वह परमार्थ में अबोध होता है। उसका सारा चिंतन–मनन एक प्रकार की मलिनता ही है, क्योंकि मन और बुद्धि फैलाव का कारण हैं और परमार्थ बुद्धि को बाहर फैलाव से हटाकर एकाग्र करने का विषय है। अतः गुरु मन और इंद्रियों को स्थिर करने का साधन शिष्य को देता है, अपनी तवज्जोह से, दयादृष्टि के उभार से, उनको स्थिर कर, बुद्धि को निर्मलता प्रदान करता है। परमार्थ में मन–इंद्रियों की और बुद्धि की स्थिरता नितांत आवश्यक है। अपनी दयामेहर की दृष्टि से गुरु शिष्य को टिकाव में लाकर उसे अपनी बोली (जो बेज़बानी की ज़बान है) समझने और बोलने लायक़ कर देता है अर्थात अंतर्मुख नाद या ध्वनि का परिचय और अनुभव उसे देता है। गुरु को हर वक़्त शिष्य की भलाई का ख़्याल रहता है। वह यत्न करता है कि शिष्य विकार रहित हो, उसके सारे अवगुण धुल जाएँ। गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं :

सुखदाता गुरु सेवीऐ सभि अवगण कढै धोइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰43)

अर्थात पूर्ण गुरु दुरमति की मलिनता दूर कर देता है।

धन्नु धन्नु गुरू गुरु सतिगुरु पाधा जिनि हरि उपदेसु दे कीए सिआणे।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰4, पृ॰168)

कहते हैं, सत्गुरु सुमति प्रदान कर शिष्य को सियाना, विवेकवान बनाता है। ऐसा सत्गुरु धन्य है। इस संदर्भ में कई प्रमाण गुरुवाणी में मिलते हैं।

सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰286)

और,

सतिगुरु सिख के बंधन काटै।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰286)

वह शिष्य के सारे बंधन काट देता है। गुरु अर्जन साहिब कहते हैं :

अउखी घड़ी न देखण देई अपना बिरदु समाले।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म॰5, पृ॰682)

जिस प्रकार माता बच्चे को आने वाले संकट से बचाती है, इसी प्रकार गुरु शिष्य की रक्षा करता है। आगे कहते हैं :

भए कृपाल गुसाईआ नठे सोग संताप।।
तती वाउ न लगई सतिगुरि रखे आपि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी माझ म॰5, पृ॰218)

अर्थात गुरु शिष्य के सारे रोग और संताप दूर कर देता है। प्रारब्ध के दुखों को अपनी शक्ति से हल्का कर देता है और दुख सहने की शक्ति भी शिष्य को देता है।

जिउ जननी सुतु जाणि पालती राखै नदरि मझारि।।
तिउ सतिगुरु गुरसिख राखता हरि प्रीति पिआरि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰4, पृ॰168)

माता से भी अधिक अटूट प्यार से गुरु शिष्य को पालता है। वह 'नाम' अर्थात अमर–जीवन का भोजन खिलाकर शिष्य का लालन–पालन करता है। इसी संदर्भ में आता है :

माता प्रीति करे पुतु खाइ।। मीने प्रीति भई जलि नाइ।।
सतिगुर प्रीति गुरसिख मुखि पाइ।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰4, पृ॰164)

वह प्रेम की रोटी, जीवन–अमृत शिष्य को देता है। मौलाना साहिब फ़रमाते हैं :

दस्ते-पीर अज़ गायबाँ कोताह नीस्त।
दस्ते-ऊ जुज़ कब्ज़ा-ए अल्लाह नीस्त।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.312)

गुरु का अदृश्य हाथ बहुत लंबा है, सामीप्य और दूरी से वहाँ कोई अंतर नहीं पड़ता। उसमें वह करण–कारण प्रभु–सत्ता काम करती है।

महापुरुषों की वाणियों में कई उदाहरण इस संदर्भ में मिलते हैं। गुरु रामदास साहिब फ़रमाते हैं :

जैसी गगनि फिरंती ऊडती कपरे बागे वाली।।
ओह राखै चीतु पीछै बचरे नित हिरदै सारि समाली।।
तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की गुरु सिख रखै जीअ नाली।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰4, पृ॰168)

जैसे कूंज अपने बच्चों को छोड़कर दूर चली जाती है, किंतु वह चित्त, ध्यान, बच्चों में रखती है, ऐसे ही गुरु शिष्य को सदैव अपनी दृष्टि मे रखकर उसकी प्रतिपालना करता है। अनगिनत उदाहरण महापुरुषों ने समझाने के लिए दिए हैं। तुलसी साहिब फ़रमाते हैं :

सोना काई नहीं लगे, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुरु भगत, कबहुँ नर्क न जाय।।

— तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की बानी (शब्द 17, पृ.271)

सत्गुरु की चेताई हुई आत्मा को अंत समय यम नहीं ले जाते, सत्गुरु स्वयं उसको अपने साथ ले जाता है। जैसे सोने को जंग और लोहे को घुन नहीं लगता, ऐसे ही गुरु भक्त, अच्छा हो या बुरा, वह कभी नरक में नहीं जाता। हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज फ़रमाते थे कि पूरे गुरु से 'नाम' लेने के बाद अगर यमों के साथ जाना है, तो ऐसे 'नाम' और गुरु दोनों को दूर से हमारा नमस्कार है।

इंसान इंसान को क्यों पूजे?

अब सवाल पैदा होता है कि इंसान इंसान को क्यों पूजे? गुरु हमारी तरह मानव देह रखता है, परंतु उसमें वह परमात्मा प्रकट है। है वह सबमें, गुरु में वह प्रकट है।

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सेवक और दास को अंग 27, पृ.20)

गुरु में वह प्रकट है, वही दूसरों में प्रकट कर सकता है। इसलिए उस मानव देह की हम क़द्र करते हैं। इसीलिए कहा है :

हरि की सेवा सतिगुरु पूजहु करि किरपा आपि तरावै।।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1264)

गुरु के मानव घट में वह प्रभु ही बैठा हुआ जीवों को अपने साथ जोड़ता है। वह नाम–सदेह है, शब्द–सदेह है। वह 'नाम' से, 'शब्द' से हमें जोड़ देता है, जो निजघर जाने का रास्ता है। आगे फ़रमाते हैं :

निरजीउ पूजहि मड़ा सरेवहि सभ बिरथी घाल गवावै।।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰4, पृ॰1264)

जो निर्जीव की पूजा करते हैं, मढ़ियों–मसानों को पूजते हैं, उनकी सारी मेहनत अकारथ चली जाती है। चार खानियाँ (उत्पत्ति) हैं। पहली वह, जो धरती में उगती है, उसको उखमज कहते हैं। उखमज, वनस्पति आदि, जिसमें एक ही तत्त्व, जलतत्त्व, प्रबल है अन्य सब गौण है। दूसरी सृष्टि, जो पसीने से पैदा होती है, स्वेदज कीड़े–मकोड़े आदि, जिनमें दो तत्त्व प्रबल हैं। तीसरे अंडज, अंडों से पैदा होने वाले पक्षी, जलचर आदि। इनमें तीन तत्त्व प्रबल हैं। चौथे जेरज अर्थात जेर (झिल्ली) से उत्पन्न होने वाली सृष्टि, पशु, जिनमें चार तत्त्व प्रबल हैं। मानव में पाँचों तत्त्व, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश प्रबल हैं। इसलिए मानव का पूज्य मानव ही हो सकता है। नीची योनियाँ अर्थात वनस्पति (तुलसी, पीपल आदि) पशु–पक्षी (गाय, गरुड़ आदि) उसके पूजने योग्य नहीं हैं। पंच तत्त्व परिपूर्ण प्राणी नीची योनियों की पूजा करके नीचे ही जाएगा। अतः मानव के पूजने योग्य मानव ही है, वह महामानव जिसके अंतर परमात्मा प्रकट है, जो उसमें (प्रभु में) अभेद है। उसको गुरु या सत्गुरु कहते हैं। महापुरुषों ने स्पष्ट शब्दों में गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति की है। दसम गुरु साहिब के प्रमुख शिष्य भाई नंदलाल 'गोया' कहते हैं :

बह्रे दीदने रुए तो आमदम मरा बवजूद,
वगरना आमदनम अज अदम मरा चे सूद।

अर्थात तेरे दर्शन के लिए मैंने देह धारण की, वरना यहाँ आने का और क्या लाभ था? एक सूफ़ी फिर कहते हैं :

हवाए बन्दगी आवरद दर वजूद मरा,

वगरना ज़ौक चुनीं आमदन नबूदमरा।

– फ़ज़्लुल्लाह रशीदी (ज़िक्रे–हक़)

कहते हैं, तेरी भक्ति की अभिलाषा मुझे इस देह में खींच लाई, वरना मुझे क्या ख़ुशी थी, यहाँ आने की!

दरां जमां नयसाईं बयाद मी मीरम,
बग़ैर यादेतोजीं ज़ोस्तन चे सूद मरा।

अर्थात जब तू मुझे भूल जाता है, तो मैं मृतवत हो जाता हूँ। तेरी याद के बिना जीवन में क्या रखा है। मौलाना रूमी साहिब कहते हैं :

बया साक़ी इनायत कुन तू मौलानाए-रूमी रा,
गुलामे-शम्स तबरेज़म क़लंदर वार मी गरदम।

– नुकाते–दीवाने–शम्स तबरेज़ी (पृ.8)

कि हे प्रभु! मौलाना रूमी पर दया कर। क़लंदरों की तरह मस्ती में मैं पुकारता हूँ कि मैं शम्स तबरेज़ का गुलाम हूँ।

मौलवी हरगिज़ नशुद मौलाए रूम,
ता गुलामे शम्स तबरेज़ी न शुद।

– किताब–उल–बैअत (पृ.8)

कि मौलवी रूमी हरगिज़ मौलाना रूमी न बनता, यदि वह शम्स तबरेज़ का गुलाम न बनता। अपने गुरु की महिमा बखान कर रहे हैं। अमीर ख़ुसरो, जो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे, कहते हैं :

ख़ल्क मी गोयद किह् ख़ुसरो बुत परस्ती मी कुनद,
आरे आरे मी कुनम बा ख़ल्को-आलम कार नीस्त।

अर्थात दुनिया कहती है कि ख़ुसरो बुतपरस्त (मूर्तिपूजक) हो गया। हाँ, मैं बुतपरस्त हूँ। मैं जानता हूँ, मुझे वहाँ से क्या मिल रहा है। मुझे दुनिया से क्या लेना है? लोक–लाज के पीछे या अपना नाम आगे बढ़ाने के लिए, जो गुरु को पीछे कर देते हैं, उनके लिए गुरुवाणी में आया है :

जो गुरु गोपे आपणा सु नाही पंचहु ओनि लाहा मूलु सभु गवाइआ।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰304)

वे नर पाप के भागी हैं। यह बुद्धि–विचार से परे की बातें हैं। इसीलिए मौलाना रूम साहिब ने प्रार्थना की, हे सत्गुरु,

ईं ख़िरदे बेगाना रा दरकार कश।

मेरी बुद्धि सत्य से मुझे दूर ले जाने वाली है। इस पर तू क़ाबू रख। यह उन महापुरुषों के कथन हैं, जिन्होंने उस करण–कारण प्रभु–सत्ता को मानव देह में रखा। जो समाज–धर्म की मर्यादा से, शरीयत से, डरते हैं, वे कहते हैं :

बंदगाने ख़ुदा, ख़ुदा न बाशंद, लेकिन ज़े ख़ुदा जुदा न बाशंद।

अर्थात ख़ुदा के बंदे ख़ुदा तो नहीं होते, पर वह ख़ुदा से जुदा भी नहीं होते। जो बेधड़क हो जाते हैं, वे स्पष्ट कहते हैं :

मन ख़ुदारा आशक़ारा दीदा अम्,
दर सूरते इन्सां ख़ुदारा दीदा अम्।

– भाई नन्द लाल 'गोया'

अर्थात मैंने प्रभु को देखा है, मानव देह में चलते–फिरते। हाफ़िज़ साहिब ने कहा :

हज़ूरी गर हमी ख़्वाही ग़ायब मशो हाफ़िज़,
मता मा तल्लका मन तहवा दअद्दुनिया व अहमलहा।

अरबी भाषा की तुक है। कहते हैं, यदि प्रभु से मिलना चाहते हो, तो संसार को त्याग दो। भाई नंदलाल 'गोया', जो फ़ारसी भाषा में कविता कहते थे, इसके जवाब में कहते हैं :

ख़ुदा हाज़िर बुवद दायम बबीं दीदारे-पाकश रा।

– दीवाने–गोया (पृ.12)

कहते हैं, वह प्रभु तो गुरु के स्वरूप में सामने खड़ा है, उसके पवित्र ज्योतिर्मय मुखमंडल का दर्शन कर। उसे छोड़कर कहाँ जाना है!

दंभी गुरु से बचो

यह है सच्चे गुरु की महिमा! जहाँ असल हो वहाँ उसकी नक़ल भी होती है। उसके लिए महापुरुषों ने यह कसौटी रखी है कि जो तुम्हें नक़द

सौदा दे, सामने बिठाकर पूंजी दे सत्य की, वह आँख बना दे, जिससे तुम अंतर्मुख उस ज्योतिस्वरूप प्रभु की ज्योति को देख सको, उसकी ध्वनि को सुन सको– यह न कहे, किए जाओ, मरकर मिलेगा– केवल ऐसे गुरु के पास जाने से जीव का कल्याण होगा। मौलाना रूम ने बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से निर्णय किया है कि सच्चा गुरु कौन है और दंभी गुरु कौन है?

फ़रमाते हैं :

दिला निज़दे-कसी बेनशीं किह् ऊ अज़ दिल ख़बर दारद,

ऐ दिल! किसी ऐसे कि संगति कर, जिसको हमारी स्थिति का पता हो कि किस प्रकार हम मन के थपेड़ों में बह रहे हैं। जो हमारी तरह सारी परिस्थितियों से गुज़रा है, वही जानेगा न!

बे ज़ेरे-आँ दरख़्ती रौ किह् ऊ गुलहाय तर दारद।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ी (ग़ज़लियात, पृ.128)

ऐसे पेड़ के नीचे बैठो, जिस पर ताज़े फूल महक रहे हों। धूप से झुलसा आदमी ऐसे पेड़ के नीचे आ जाए, तो उसे होश आ जाता है, थोड़ी देर के लिए।

दावा अगनि बहुतु तृण जाले कोई हरिआ बूटु रहिओ री।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ.384)

कोई विरला हरा–भरा पेड़ (कल्याणकारी मानव) बाक़ी है और सबको तृष्णा की आग जला रही है।

सभी भुलानो पेट के धंधा।

– कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2 (चितावनी शब्द 26, पृ.37)

अनुभवी पुरुष के पास जाकर थोड़ा होश आएगा, ठंडक और टिकाव मिलेगा। आगे कहते हैं :

दरीं बाज़ारे-अत्तारां मरौ हर सू चू बेकारां,
ब-दुकाने कसे ब-नशीं किह् दर दुकान शकर दारद।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ी (पृ.128)

कहते हैं, दुनिया के बाज़ार में बेकारों सरीखे न फिरो, किसी ऐसी दुकान पर जाकर बैठो, जहाँ शहद हो। अब चेतावनी देते हैं कि जहाँ असल है, वहाँ नक़ल भी है। कहते हैं :

बेह्र देग़ी किह् मी जूशद म्यावर क़ासे व मनशीं,
किह् हर देग़ी किह् मी जूशद दरून चीज़ी दिगर दारद।

— दीवाने–शम्स तबरेज़ी

अर्थात जहाँ देग़ भरा उबल रहा हो, वहाँ प्याला लेकर न बैठो।

हो सकता है, वहाँ स्वार्थ की हांडी चढ़ी हो। प्रचार बहुत हो रहे हैं। बड़े देग़ उबल रहे हैं। सच्चे गुरु के पास ही यह चीज़ (सत्य की पूँजी) मिल सकती है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

कबीर माइ मूंडउ तिह गुरू की जा ते भरमु न जाइ।।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दीए बहाइ।।

— आदि ग्रंथ (सलोक कबीर, पृ.1369-70)

जिस गुरु से हमारे भ्रम दूर न हों, वह गुरु किस काम का! जो केवल पढ़ने–लिखने–विचारने में डूबा हुआ है, उससे जो लगेगा, वह भी साथ में डूबेगा। गुरु अंगद साहिब कहते हैं :

गुरू जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ.58)

जिसकी अपनी आँख नहीं खुली, वह दूसरे की आँख कैसे खोलेगा? इसी संदर्भ में कहा है :

गुरू सदाए अगिआनी अंधा किसु ओहु मारगि पाए।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰3, पृ॰491)

अर्थात जिसकी अंतर्दृष्टि नहीं खुली, जिसे स्थूल जगत से परे कुछ नहीं दिखता, वह दूसरों का मार्गदर्शन कैसे कर सकता है? गुरुवाणी में एक जगह आता है :

अंधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ।।
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ि पाइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली वार म॰3, पृ॰954)

कहते हैं, ऐसा गुरु जिसकी अंतर की आँख नहीं खुली, उसके बताए हुए रास्ते पर चलने वाला भी अंधा है। आँख वाला हो, तो ग़लत रास्ते पर क्यों चले?

साहिबु जिस का नंगा भुखा होवै तिस दा नफरु किथहु रजि खाए।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰306)

विषय का स्पष्टिकरण करते हुए कहते हैं कि मालिक ही भूखा–नंगा हो, तो नौकर को पेट भर रोटी कहाँ जुड़ेगी? श्री गुरु रामदास जी कहते हैं :

जिस दी सेवा कीती फिरि लेखा मंगीऐ सा सेवा अउखी होई।।
नानक सेवा करहु हरि गुर सफल दरसन की फिरि लेखा मंगै न कोई।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰306)

अर्थात जिसकी सेवा करने से धर्मराज हिसाब माँगे, उस गुरु की सेवा दुख का कारण बनेगी। ऐसे गुरु की सेवा करो, जो हरि का रूप है, जिसके दर्शन से जीव को सफलता प्राप्त हो अर्थात कर्मों का हिसाब ख़त्म हो जाए, धर्मराज हिसाब न माँगे। दुनिया झूठे गुरुओं से भरी पड़ी है। शब्द–श्रोत्री, शब्द–निष्ठ गुरु दुर्लभ हैं। झूठे गुरु को त्यागने में देर नहीं करनी चाहिए। कबीर साहिब कहते हैं :

झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै वार।
द्वार न पावे सबद का, भटकै बारंबार।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (झूठे गुरु का अंग 11, पृ.13)

सच्चे गुरु को माँगो। वह तुमको अवश्य मिलेगा। सच पूछो, तो गुरु आप ही चेले को पकड़ लेता है, वरना अंधा आँख वाले को कैसे पकड़ सकता है? बाइबिल में आता है :

'Knock, and it shall be opened unto you.'

- Holy Bible (Matt 7:7 & Luke 11:9)

द्वार खटखटाओ, वह अवश्य खुलेगा।

सच्ची पुकार हो, तो प्रभु सुनता है और किसी मिले को मिला देता है। कुरान शरीफ़ (2.186) में आता है कि,

हे रसूल! जब कोई मेरा बन्दा मेरे बारे में तुझसे
पूछे तो यूँ कह दे कि मैं उनके पास हूँ, और जब

वह पुकारता है तो मैं उसकी पुकार को सुनता हूँ और उसको कबूल करता हूँ।

– कुरान शरीफ़ (2.186)

गुरुवाणी में इसी संदर्भ में आता है :

पिता कृपालि आगिआ इह दीनी बारिकु मुखि माँगै सो देना।।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰5, पृ॰1266)

जब तक सच्चा गुरु नहीं मिलता, उस वक़्त तक क्या करें, जिससे उसकी उपलब्धि हो? कबीर साहिब कहते हैं :

ऐसी भक्ति करो घट भीतर, छोड़ो कपट चतुराई।
सेवा बंदगी और अधीनता, सहज मिले गुरु आई।।

सत्संग किसको कहते हैं?

सत्संग कहते हैं, सत् के संग को। वह प्रभु सत् है। उसका संग अर्थात परिपूर्ण परमात्मा से जुड़ने का नाम ही सत्संग है। जब तक वह सत्संग न मिले, तो जिस मानव घट में वह प्रभु प्रकट है, उसका संग भी सत्संग ही है। सत् कहते हैं, अमर–जीवन को। सत्गुरु अमर–जीवन प्राप्त हस्ती है।

सो जीविआ जिसु वसिआ सोइ।। नानक अवरु न जीवै कोइ।।

– आदि ग्रंथ (माझ वार तथा सलोक म॰1, पृ॰142)

जीवित पुरुष वही है, जिसने जीवनाधार परमात्मा को मन में बसा लिया, अन्य कोई जीवित नहीं। ऐसे ज़िन्दा पुरुष की संगति का नाम सत्संग है। श्री गुरु अमरदास साहिब कहते हैं :

सतिगुर बाझहु संगति न होई।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1068)

आगे और स्पष्टिकरण करते हैं :

पूरे गुर ते सतसंगति ऊपजै सहजे सचि सुभाइ।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰427)

अर्थात सत्संगति सत्गुरु से ही उपजती है। इसी संदर्भ में कहते हैं :

जह सतिगुरु तह सतसंगति बणाई।। जह सतिगुरु सहजे हरि गुण गाई।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰3, पृ॰160)

वह 'नाम' या 'शब्द–ध्वनि' का परिचय देता है। शास्त्र कहता है कि ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण होता है। इसी प्रकार सत् को जानने वाला सत् ही है। सत् और सत्पुरुष में कोई अंतर नहीं। सत्गुरु सत् का व्यक्त स्वरूप है, वह सत् ही है, जिसकी झाँकी उसकी संगति में मिलती है। मन जिसके साथ और जिसके सम्मुख रहता है, उसी का रंग पकड़ लेता है और उसका रूप बन जाता है। अगर वह दुनियादारों की सोहबत–संगति में रहे, तो दुनिया का रंग उस पर चढ़ता है। यदि वह आध्यात्मिक पुरुषों की संगति में रहे, तो उस पर अध्यात्म का रंग चढ़ता है और वह आध्यात्मिक पुरुषों का रूप बन जाता है।

सोहबते-सालिह तुरा सालिह कुनद, सुहबते-तालिह तुरा तालिह कुनद।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.102)

अर्थात सज्जन पुरुषों की संगति तुम्हें सज्जन बना देगी और दुर्जन की दुर्जन। प्रायः लोग कथा–वार्ता, धर्म–चर्चा या किसी विद्वान के व्याख्यान को या ऐसे समागम को जहाँ लोग मिलकर कीर्तन करें, उसको सत्संग कहते हैं। संतों कि दृष्टि में वह सत्संग नहीं। सत्संग वह है, जहाँ सत् की अभिव्यक्ति हो रही हो, जहाँ उसकी झलक मिले। गुरु अर्जन साहिब कहते हैं :

सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउं।।
तिस के संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰286)

अर्थात जिसने सत्पुरुष को जान लिया, उसका नाम है– सत्गुरु। उसकी संगति में शिष्य प्रभु से जुड़ जाता है।

सत्संग का प्रभाव

ज़िंदगी से ज़िंदगी मिलती है।

सुभर भरे प्रेम रस रंगि।। उपजै चाउ साध कै संगि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰289)

महापुरुष प्रेम के रस और मस्ती के लबालब भरे प्याले के समान हैं। उनको देखकर चाव उपजता है, हरि मिलन का, खरबूज़े को देख खरबूज़ा रंग पकड़ता है। ऐसे ही, आध्यात्मिक पुरुषों का प्रभाव हमें आध्यात्मिक

बना देता है। सब पर प्रेम की बूंदें छिड़की जाती हैं। पढ़ा–अनपढ़ सब उससे रंग ले जाते हैं। सत्गुरु का दिव्य–सौंदर्य और आकर्षण जैसा–जैसा पात्र हो, हृदय की सफ़ाई हो, उसको आकृष्ट करता है। उसके मंडल में बैठे हुए समय का भान नहीं रहता। आध्यात्मिक पुरुषों के प्रभाव से काल और माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है। महाभारत (3.1.24-26) में आता है :

जिस प्रकार फूलों की सुगंधि से आस-पास की सब वस्तुएँ सुगंधित हो जाती हैं, इसी प्रकार संतों की संगति सुमति का प्रभाव देती है। सांसारिक लोग, जो दुनिया में फंसे हुए हैं, वे अविद्या में हैं, उनकी संगति अविद्या का असर देने वाली है। संतों की संगति हमारी आत्मा को सत्य और धर्म का प्रभाव देती है। इसीलिए संतों की संगति करनी चाहिए, ताकि हम उनके मंडल के शांतिदायक प्रभाव को ग्रहण कर सकें।

इसी भाव को मौलाना रूम ने बड़ी ख़ूबसूरती से अपनी वाणी में व्यक्त किया है। कहते हैं :

गिले ख़ुश्बूए दर हम्माम रोज़े, रसीद अज़ दस्त महबूते बदस्तम।
बदौ गुफ़्तम के मुश्क़ी या अबीरी, के अज़ बूए दिलावेजे के मस्तम।
बगुफ़्ता मन गिले नाचीज़ बूदम, वलेकिन मुद्दते बां गुल निशस्तम।
जमाले हमनशीं दरजां असर कर्द, वगरना मन हमा ख़ाक़म के हस्तम।

अर्थात एक दिन हम्माम में बड़ी ख़ुश्बूदार मिट्टी मेरे हाथ लगी। पूछा, तू बड़ी ख़ुश्बूदार है, तू मुश्क़ है या अंबर? कहने लगी कि हूँ तो मैं तुच्छ मिट्टी ही, पर कुछ समय मुझे फूलों के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिससे मैं भी ख़ुश्बूदार हो गई। इसी संदर्भ में आता है :

पारस महि औ संत में, बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करै, वह करै आप समान।

– उपदेश रत्नाकर (पृ.64)

अर्थात पारस और संत मे बड़ा अंतर है। पारस लोहे को सोना बनाता है, पारस नहीं बनाता। संत तुमको संत बना देता है। ऐसे सत्गुरु की शरण में कौन जा सकता है?

जा के मसतकि लिखिओ करमा।। सो भजि परि है गुर की सरना।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ नामदेव, पृ॰1165)

संतों की संगति बड़े भाग्य से मिलती है। वह सुरतवंत होते हैं, उनकी संगति में जो भी जाता है, उसकी सुरत ठहरने लगती है। क्योंकि मन सुरत से ही ताक़त लेता है, इसलिए मन भी स्थिर हो जाता है।

सूरत साधू संग ठहिराई। तब मन थिरता सूरत पाई।

– तुलसी साहिब

तुलसी दास जी फ़रमाते हैं :

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।

– रामचरितमानस (बालकांड दोहा 7, चौपाई 5)

मिट्टी हवा में मिलकर आसमान पर चली जाती है। वही मिट्टी जल की संगति से कीचड़ बन जाती है। जो एकाग्रता के साथ सत्संग करते हैं, वे पूर्ण पुरुष के सत्संग–मंडल में चलने वाली आत्म–रंग की धाराओं से, radiation से पूरा लाभ उठाते हैं। स्वामी जी महाराज ने इसीलिए कहा :

करो री कोई सत्संग आज बनाय।

– सार बचन, पद्य (बचन 14, शब्द 4)

बनाकर सत्संग करो[28] अर्थात सब तरफ़ से चित्त–वृत्तियों को हटाकर पूर्ण पुरुष के चरणों में बैठो। वह रहे या तुम रहो और कोई ख़्याल न रहे, देह तक का भान न रहे। अपलक नेत्रों से टकटकी बाँधकर दर्शन करते रहो, क्योंकि *"यह आँखें हैं धुर घर की।"* 'Eyes are the windows of of the soul,' आँखें खिड़कियाँ हैं, जिनसे कि आत्मा बाहर झाँकती है। उसकी आँखें प्रभु में मस्त होती हैं। *"चश्मे तो मस्ते ख़ुदा।"* उससे आत्म–रस की ख़ुराक़ आत्मा को मिलती है। इसी का नाम उपासना, उप–आसन अर्थात पास बैठना है। यह वह शिक्षा है, जो शब्दों के बिना, केवल आँखों से दी जाती है।

हीच नकशद नफ़स रा जुज़ ज़िल्ले पीर,

---

28. महाराज कृपालसिंह जी की प्रथम विश्व यात्रा की घटना है। आप पहलक व्यक्ति थे, जो रूसी सेनाओं से घिरे बर्लिन नगर में गए। वहाँ सत्संग किया। दुभाषिया साथ में जर्मन भाषा में अनुवाद करता जाता था। थोड़ी देर बाद श्रोतागण, जो एकाग्रचित्त सुन रहे थे, कहने लगे, "दुभाषिए को हटा दो। वह ग़लत अनुवाद कर रहा है। हम इनकी आँखों से ज़्यादा सही समझ रहे हैं।"

गर बेख़्वाही हमनशीनी बा ख़ुदा।

– गुल्ज़ार–ए–इश्क़–ए–कमाल

अर्थात मन कभी नहीं मरता, जब तक इस पर किसी पीर का, गुरु का साया न पड़े।

महा पवित्र साध का संगु।। जिसु भेटत लागै प्रभ रंगु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰393)

साधु की संगति निर्मलता प्रदान करती है, उससे प्रभु का रंग मिलता है। इसलिए प्रार्थना करते हैं :

जिन डिठिआ मनु रहसीऐ किउ पाईऐ तिन् संगु जीउ।।
संत सजन मन मित्र से लाइनि प्रभ रंगु जीउ।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰760)

जिसके दर्शन से मन स्थिर हो, हे प्रभु! उनकी संगति कैसे मिल सकती है? वही हमारे मित्र हैं, जो हमें प्रभु के रंग में रंग दें।

जिना दिसंदड़िआ दुरमति वंञै मित्र असाडड़े सेई।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी वार म॰5, पृ॰520)

कहते हैं, जिनके दर्शन से हमारी कुमति का नाश हो, वही हमारे सच्चे मित्र हैं। मौलाना रूम इसी संदर्भ में कहते हैं :

हर किह् ख़्वाहद हमनशीनी बा ख़ुदा, गो नशीनद दर हुज़ूरे-औलिया।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.209)

हमनशीनी साअते बा औलिया, बिहतर अज़ सद साला ताअत बे रिया।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.101)

अर्थात जो प्रभु का सामीप्य चाहता है, वह पहुँचे हुए महात्माओं के चरणों में बैठे। कहते हैं, यदि थोड़ा समय किसी अनुभवी महापुरुष के पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त हो जाए, तो उसका फल सौ साल की निष्कपट भक्ति से ज़्यादा है।

श्रीमद्भागवत् के 11वें स्कंध, 12 अध्याय, 1-15वें श्लोकों में आता है :

हे ऊधो! न योग, न ज्ञान, न धर्मग्रंथों के पढ़ने, न तप, न त्याग, न दूसरों की सेवा, न दान, न हवन, न पाठ, न वेदों के अध्ययन से, न

तीर्थ-यात्रा और न मन-इंद्रियों के दमन से जीव मुझको इतनी सरलता से पा सकते हैं, जितना शीघ्र सत्संग से। सत्संग से दुनिया के सारे संस्कार दूर हो जाते हैं।

गोसांई तुलसीदास जी कहते हैं :

संत समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय।
जिन पर कृपा राम की ताहि प्राप्त यह होय।।

ऐसे संतों की संगति प्रभु कृपा से ही मिल सकती है। यही गुरुवाणी में आया है :

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा।।
कहु नानक तिसु भइए परापति जिसु पुरब लिखे का लहना।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म°5, पृ°642)

इसीलिए, कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

कबीर संगति साध की, अंत करे निर्बाह।
साकत संग न कीजिये, जाते होइ बिनाह।।

अर्थात साधु की संगति बंधन से मुक्त करने वाली है और साकत अर्थात प्रभु से टूटे हुए की संगति सर्वनाश का कारण है।

तुलसी साहिब फ़रमाते हैं :

पुनि बन्दौं सन्तन सरनाई, जिन पुनि सुरति निरति दरसाई।
बार बार संतन बलिहारी, सुरति दीनी लखन सहारी।
होवे इष्ट संत श्रुति सारा, संत बिना कोई पावे न पारा।
जो किछु करे करे सोई सन्ता, संत बिना पावे नहीं पन्था।
ताते बार-बार सरनाऊं, दीन होय संतन गुण गाऊं।

– घट रामायण, भाग 1 (भेद पिंड और ब्रह्मंड का, चौपाई, पृ.14)

हजरत बाहू साहिब फ़रमाते हैं :

कलमा आशक ओथे पढ़दे जित्थे नूर इलाही दी होली हू।
कलमा सानूं पीर पढ़ाया, जिन्दजान उसथीं घोली हू।।
चौदां तबक करे रुशनाई, अन्नेयाँ कुछ न दिस्से हू।
बाझ विशाल मुर्शिद दे बाहू, होर कहानियां किस्से हू।।

बुल्लेशाह साहिब इसी संदर्भ में फ़रमाते हैं :

ना ख़ुदा क़ुरान कताबां, ना ख़ुदा नमाज़े।
ना ख़ुदा मैं तीरथ डिठा, ऐवें पैंडे झाखे।

हुज़ूर महाराज राय शालिगराम जी फ़रमाते हैं :

ऊँच से ऊँचा देस है वह अधर ठिकानी।
बिना संत पावे नहीं स्रुत शब्द निशानी।।

– प्रेम बानी, भाग 1 (बचन 6, शब्द 11)

जो अधर में है, जहाँ यह धरा नहीं, बिना संत के, सुरत–शब्द के अभ्यास के, जीव उसको पा नहीं सकता। यहाँ भेस का काम नहीं। बर्फ़ पर काला कंबल भी डाल दो, तो भी ठंडक ही आएगी, गंदगी पर रेशम का कपड़ा भी पड़ा हो, तो भी सड़ांद उठती है। जो सत् के साथ नहीं जुड़े, कितना ही कथा–वार्ता, ज्ञान–ध्यान बखानें, सुनने वाले पर असर नहीं हो. ता, क्योंकि वचन जिस हृदय से निकलते हैं, उसका असर लेकर आते हैं।

'Out of the abundance of heart a man speaks.'

व्यक्ति अपने हृदय की विशालता से ही बोलता है।

– पवित्र बाइबिल (लूका 6:45)

जिसके मन में हर वक़्त वेग उठ रहे हों, कभी काम, कभी क्रोध, कभी ईर्ष्या–द्वेष, कभी लोभ के, वह मुँह से कितना ही ज्ञान–ध्यान की बात करे, असर तो वही होगा, जो हृदय की अवस्था है। आजकल जितना धर्मोपदेश, प्रचार हो रहा है, शायद ही किसी ज़माने में हुआ होगा। मगर असर क्या है? उसका कारण यही है कि कथनी है, करनी नहीं, ज़बानी जमा–ख़र्च बहुत है, जीवन नहीं। इसीलिए, एक मुसलमान फ़क़ीर कहता है कि साधु–संग न मिले, तो अकेले में मालिक की याद में बैठ जाओ। सत्संग की बड़ी महिमा महापुरुषों ने गाई है। गुरु अर्जन साहिब कहते हैं :

महा पवित्र साध का संगु।। जिसु भेटत लागै प्रभ रंगु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰393)

वहाँ हरि–रंग मिलता है। भेंटने से, दिल से दिल को राह बनने से। ख़ाली मिलने से नहीं।

सुभर भरे प्रेम रस रंगि।। उपजै चाउ साध कै संगि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰289)

कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (साध का अंग 34, पृ.119)

सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कह कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (साध का अंग 42, पृ.120)

सत्संग में जाकर प्रभु–प्रेम व विश्व–प्रेम की देन मिलती है। गुरु अर्जन साहिब कहते हैं :

बिसरि गई सभ ताति पराई।। जब ते साधसंगति मोहि पाई।।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।।

– आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1299)

श्री गुरु अमरदास साहिब फ़रमाते हैं :

त्रै गुण माइआ मोहु पसारा सभ वरतै आकारी।।
तुरीआ गुणु सतसंगति पाईऐ नदरी पारि उतारी।।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰3, पृ॰1261)

अर्थात सत्संग में तुरिया पद और अंत में परम–पद की प्राप्ति होती है। गुरु रामदास जी कहते हैं :

हरि सतसंगति सत पुरख मिलाईऐ।।
मिलि सतसंगति हरि नामु धिआईऐ।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰4, पृ॰96)

मालिक का मिलाप हो जाता है। गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं :

मेरे माधउ जी सतसंगत मिले सि तरिआ।।
गुर परसादि परम पदु पाइआ सूके कासट हरिआ।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी म॰5, पृ॰495)

अर्थात सत्संगत से सूखी लकड़ी भी हरी हो जाती है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

सत्गुरु धारा निर्मल बहे, वा में तन-मन धोई ले।

और श्री गुरु अर्जन साहिब कहते हैं :

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता।।
मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता।।
– आदि ग्रंथ (बिलावलु म॰5, पृ॰809)

अब मुश्किल यह है कि संतों ने कोई बोर्ड नहीं लगा रखा होता, जिससे वह पहचाने जा सकें। बहुत लोग जिनको यह गति प्राप्त नहीं, वह बहुत–सा आडंबर बना लेते हैं। दूसरी ओर सच्चा संत साधारण जीवन व्यतीत करता है, वह अपना भेद दूसरे पर प्रकट नहीं करता। जिसको वह आँख दे, वही उसे जान सकता है। इसलिए गुरु अर्जन साहिब ने यह कसौटी प्रस्तुत की है, संतों के मंडल की :

जिन डिठिआ मन रहसिऐ किउ पाईऐ तिन संगु जीउ।।
– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰760)

उनके मंडल में जाकर मन का पता ही नहीं लगता, वह कहाँ हैं। फिर फ़रमाते हैं :

साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा।।
– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰271)

उनकी संगति मे प्रभु नज़दीक मालूम होता है। सुखमनी साहिब में गुरु अर्जन साहिब ने एक पूरी अष्टपदी साधु की महिमा में लिखी है। महाभारत के शांति पर्व में, गीता के दूसरे और चौथे अध्याय में और भागवत् में संतों के लक्षण वर्णन किए हैं और उनके संग की महिमा गाई है। श्रीमद्‌भागवत् के तीसरे स्कंध, 25 अध्याय, 32-36वें श्लोकों में भगवान कपिल देव कहते हैं, "सब जानते हैं कि संगति बंधन का कारण है, परंतु संतों की संगति मुक्ति का द्वार खोल देती है।"

सत्संग दो प्रकार का होता है :

1. संतों का बाहरी सत्संग, जिससे मन की सफ़ाई होती है और उस मंडल का आत्मिक प्रभाव लेकर, जीव परमार्थ का अधिकारी होकर नाम की कमाई में लगता है।

2. अंतर का सत्संग, जिसमें सुरत या आत्मा, 'नाम' या परिपूर्ण परमात्मा से लगती है और उसमें समा जाती है। श्रीमद्‌भागवत् के प्रथम स्कंध, 18 अध्याय, 12-13वें श्लोकों में बताया है, "अनुभवी महापुरुष, जो

प्रभु से एक हुए हैं, उनकी संगति के महारस के आगे स्वर्ग और मोक्ष के रस भी तुच्छ हैं।" इसलिए भक्त शिरोमणि नारद जी के भक्ति–सूत्र में बड़े ज़ोरदार शब्दों में संतों की संगति का उपदेश मिलता है :

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।

– नारद भक्ति सूत्र (3:09)

अर्थात केवल उसी को साधो।

पुराणों में बड़ा सुंदर दृष्टांत आता है। महर्षि वसिष्ठ और महर्षि विश्वा. मित्र में विवाद चल पड़ा। विश्वामित्र जी कहते थे, तप बड़ा है। वसिष्ठ जी कहते थे, सत्संग बड़ा है। निर्णय के लिए ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने शिव के पास भेज दिया। शिव ने देखा दोनों ही ज़बरदस्त हैं, मैं क्या निर्णय करूँगा। उन्होंने विष्णु के पास भेज दिया। विष्णु ने आगे शेषनाग के पास भेजा। सारी बात सुनकर शेषनाग बोले, "मेरे सिर पर धरती का जो बोझ है, थोड़ा हल्का हो, तो कुछ सोचूँ।" विश्वामित्र ने 60 हज़ार वर्ष तप किया था। कहने लगे, मैं दस हज़ार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ। धरती वहीं टिकी रही। फिर बीस हज़ार, चालीस हज़ार और अंत में 60 हज़ार वर्ष की तपस्या का फल दिया, तो धरती थोड़ी देर के लिए ऊपर उठी, फिर वहीं टिक गई। वसिष्ठ जी ने कहा, "मैं ढ़ाई घड़ी सत्संग का फल देता हूँ।" धरती ऊपर उठकर अडोल खड़ी हो गई। विश्वामित्र बोले, "अब तो आपका बोझ उतर गया, निर्णय कर दो।" कहने लगे, "निर्णय तो हो गया।" अलंकार रूप में वर्णन है, सत्संग की महिमा का। सहजोबाई कहती हैं :

साध संग में चांदना, सकल अंधेरा दूर।
सहजो दुर्लभ पाइये, सतसंगत में ठौर।।
साध संग तीरथ बड़ो, ता में नीर बिचार।
सहजो न्हाए पाइये, मुक्ति पदारथ चार।।
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय।।
सहजो संगति साध की, काग हन्स हो जाय।
तज के भच्छ-अभच्छ कूं, मोती चुग चुग खाय।।

– सहजो बाई की बानी (साध महिमा)

बड़े स्पष्ट शब्द हैं। सत्संग की यह तस्वीर सत्संग में जाकर ही देखी जा सकती है। काग–वृत्ति का हंस–वृत्ति बनना एक दिन का काम नहीं। इसलिए, कबीर साहिब ने फ़रमाया :

सत्संग लाग रहो रे भाई, तेरी बिगड़ी बात बन जाई।

लगे रहो, यह जल्दबाज़ी का काम नहीं।

नाम क्या है?

परमात्मा अनाम, अशब्द है। उसको न किसी ने देखा, न देख सकता है। जब वह व्यक्त हुआ, *'एको अहम् बहुस्यामः'* और,

कीता पसाउ एको कवाउ।। तिस ते होए लख दरीआउ।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी 16, पृ॰3)

अर्थात मैं एक से अनेक हो जाऊँ, वह व्यक्त प्रभु–सत्ता जो है, उसे संतों ने 'नाम' या 'शब्द' कहा है। नाम, शब्द, सच, वाणी, Word, कलमा, हुक्म– एक ही चीज़ है। 'नाम' ही से सब कुछ बना। गुरुवाणी में आता है :

नाम के धारे खंड ब्रहमंड।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰284)

और,

नामै ही ते सभु किछु होआ बिनु सतिगुर नामु न जापै।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰753)

और,

हरि हरि उतमु नामु है जिनि सिरिआ सभु कोइ जीउ।।
हरि जीअ सभे प्रतिपालदा घटि घटि रमईआ सोइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰4, पृ॰81)

नाम 'Controlling Power' (करण–कारण सत्ता) है।

नानक सभ किछु नावै कै वसि है पूरै भागि को पाई।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

यह सारा पसारा 'नाम' का है, जिसका निवास देह में है।

जेता कीता तेता नाउ।। विणु नावै नाही को थाउ।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी 19, पृ॰4)

और,

नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु।। देही महि इस का बिस्रामु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰293)

'नाम' बाहरी दृष्टि का विषय नहीं। वह इंद्रियों के घाट से ऊपर मिलता है।

अदृसट अगोचरु नामु अपारा।। अति रसु मीठा नामु पिआरा।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1042)

पाँच चक्रों को तय कर आज्ञा चक्र पर आएँ, तभी उसको पा सकते हैं।

काइआ नगरी महि मंगणि चड़हि जोगी ता नामु पलै पाई।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰908)

'नाम' में प्रकाश है,

नामु जपत कोटि सूर उजारा

– आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰5, पृ॰700)

'नाम' में ध्वनि है, कीर्तन हो रहा है।

राम नाम कीरतन रतन वथु हरि साधू पासि रखीजै।।
जो बचनु गुर सत सत करि मानै तिसु आगै काढ़ि धरीजै।।

– आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1326)

गुरु द्वारा ही 'नाम' मिल सकता है।

बिनु गुर नामु न पाइआ जाइ।। सिध साधिक रहे बिललाइ।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰115)

'नाम' का अखुट (अक्षुण्ण) भंडार गुरमुख को मिलता है, मनमुख को नहीं।

नामु अखुटु निधानु है गुरमुखि मनि वसिआ।।

– आदि ग्रंथ (सूही वार तथा सलोक म॰3, पृ॰787)

मनमुख नामु न जाणनी बिणु नावै पति जाइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰28)

कोई कर्म–धर्म ‘नाम’ के बराबर नहीं, *“कुछ पुन दान अनेक क्रिया, सब ऊपर नाम।”* नेक–बद, सुघड़–मूढ़, सब इसके साथ लग, तर जाते हैं।

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।।

– आदि ग्रंथ (जपु जी अंतिम, पृ॰8)

हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज फ़रमाते थे कि जुलाब की गोली कोई ग़लती से भी खा जाए, तो दस्त लग जाते हैं। रामायण के बालकांड में ’नाम’ की महिमा बखान करते हुए, यहाँ तक कहा गया है :

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।।

— रामचरितमानस (बालकांड 26:4)

यही ’शब्द’ की महिमा की गई है।

उतपति परलउ सबदे होवै।। सबदे ही फिरि ओपति होवै।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰117)

सारी सृष्टि के पाँच खंड माने गए हैं। ’शब्द’ पाँचों का बनाने वाला है, इसलिए उसे ’पाँच शब्द’ करके वर्णन किया गया है। कबीर साहिब कहते हैं :

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी।।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी।।

– आदि ग्रंथ (बिभास प्रभाती कबीर, पृ॰1350)

परमात्मा को ‘पंच शब्दी’ कहा गया है, पंच शब्दी आया, और उसमें ध्वनि हो रही है। *“धुन उपजे शब्द निशान।”* मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं :

ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़ आसमाने,
क-आँ आसमाने बेरूँ जां हफ़्त ओ ईं शश आमद।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ी (पृ.138)

चुपचाप पाँच शब्दों की ध्वनि को सुनो, जो तुम्हारे अंतर आसमानों से आ रही है। वह छः चक्रों और सात आसमानों से परे है। वह अनंत वाणी है :

बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुनाइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰35)

उसका निवास घट के अंतर में है,

घट अंतरे साची बाणी

– आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰769)

अंदर और बाहर, सब उसी का पसारा है।

अंतरि बाहरि तेरी बाणी।। तुधु आपि कथी तै आपि वखाणी।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰5, पृ॰99)

जिनि जिनि जपी तेई सभि निसत्रे तिन पाइआ निहचल थानाँ हे।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1075)

गुरु की वाणी सबमें समा रही है :

गुर की बाणी सभ माहि समाणी।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1075)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं :

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वाको दरसावै।।
निकसै एक आवाज चिराग की जोतिहिं माहीं।।
ज्ञान समाधी सुनै और और कोउ सुनता नाहीं।।
पलटू जो कोई सुनै ताके पूरे भाग।।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।।

– पलटू साहिब की बानी, भाग-1 (कुंडली 169)

यह 'पाँच शब्द' कहाँ सुनाई देते हैं? रूह छः चक्रों से और सब ओर से हटे, तो इस 'शब्द' को पकड़ सकती है। पाँच नगाड़े प्रभु के द्वार पर नित्य बज रहे हैं। इन्हें सुनने से ईर्ष्या और अहंकार का नाश होता है।

हर रोज़े पंज नौबत बर दरे-ऊ, हमीं कोबंद कौसे-किब्रयाई।

अगर उफ़्तद-बिगोश्त सौते-आँ कौस, किब्र ओ अज़ हसद या-बे रहाई।

— दीवाने—शम्स तबरेज़ी (पृ.405)

यह वाणी सुखमन (सुष्मना नाड़ी) के अंतर में सुनाई देती है :

पूरे गुर की साची बाणी।। सुख्र मन अंतरि सहजि समाणी।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰663)

क्राइस्ट (ईशु मसीह) ने इसे 'Word' कहा,

'In the beginning was the Word and the Word was with God and Word was God. The same was in the beginning with God. All things were made by Him, and without Him was not made anything that was made.'

- Holy Bible (John 1.1)

आदि में 'शब्द' था, 'शब्द' परमात्मा के साथ था, 'शब्द' ही परमात्मा था। प्रारम्भ में वह प्रभु के साथ था, 'शब्द' से ही सब रचना हुई, उसके बिना कोई चीज़ नहीं जो बनी हो।

मुसलमान फ़क़ीर कहते हैं कि 'कलमे' से 14 तबक बनें। हिंदू धर्मग्रंथ कहते हैं कि 'नाद' से 14 भवन बने। तो 'नाम' करण—कारण प्रभु—सत्ता है, सबके बनाने वाली। उसके अनेकों नाम रखे गए, समझाने—बुझाने के लिए।

बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है।।

— आदि ग्रंथ (बसंतु म॰1, पृ॰1168)

सब नामों पर हम बलिहार जाते हैं, मगर,

कउनु नामु गुर जा कै सिमरै भव सागर कउ तरई।।

— आदि ग्रंथ (सोरठि म॰9, पृ॰632)

गुरु तेग़बहादुर साहिब फ़रमाते हैं कि वह कौन—सा नाम है, जिसके साथ लगकर भवसागर के पार जा सकते हैं? हरेक समाज वाले अपना ही नाम बताते हैं— मुसलमान अल्लाह, हिंदू राम, सिक्ख वाहेगुरु कि इनके सुमिरन से मुक्ति है। सच्चा 'नाम' कौन—सा हुआ?

कउनु नामु जगु जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰9, पृ॰902)

वह कौन–सा नाम है, जिसके साथ लगने से निरबान पद अर्थात त्रिगुणातीत अवस्था की प्राप्ति होती है? अक्षरी नाम तो सब तीन गुणों में हैं। नाम की निशानी क्या है?

नामु जपत कोटि सूर उजारा बिनसै भरमु अंधेरा।।

– आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰5, पृ॰700)

परमात्मा ज्योति स्वरूप है। जो सदेह ज्योति है, वह दूसरों को ज्योति दे सकता है। यही एक निशानी है। जब वह परमात्मा व्यक्त हुआ, तो एक vibration हुई, हिलोर हुई। उससे दो चीज़ें बनीं– एक ज्योति, एक ध्वनि।

धुनि आने गगन की सो मेरा गुरुदेव।।

– पलटू साहिब की बानी, भाग 1 (गुरुदेव, कुंडलिया 5, पृ.6)

जो नाद अनुभवी है, वही नाद का अनुभव कराएगा, जिसके अंदर ज्योति है, वही ज्योति जगाएगा। यह बड़ी भारी निशानी है।

यह मूलभूत शिक्षा सब महापुरुषों ने दी है, वे किसी भी समय में आए। अफ़लातून ने कहा, "मुझे मंडलों का राग सुनाई दिया।" अरस्तु ने कहा, "एक आवाज़ मुझे सुनाई दी, जो मुझे एक नई दुनिया में ले गई।" पाइथागोरस ने उसे 'Music of all Harmonies' (रागों का राग) और 'Truth, clothed in Light' (ज्योतिस्वरूप सत्य) कहा है। महात्मा ज़रतुश्तु ने उसे 'Unstruck Fire', स्वतः प्रज्ज्वलित ज्वाला और 'स्रोशा' अर्थात 'नाद' कहा है। भगवान बुद्ध ने उसे 'ज्योति मार्ग' और 'श्रुति मार्ग' कहकर वर्णन किया है। संतों ने उसे 'नाम' और 'शब्द' की संज्ञा दी है। गुरुवाणी में उसका वर्णन आता है :

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰1, पृ॰634)

महात्मा बुद्ध, जिनके बारे में कहा जाता है कि वह परमात्मा को नहीं मानते थे, वे भी नाद श्रवण के क़ायल थे। वे नास्तिक नहीं थे। उनका मूल मंत्र है, *'ओम मणि पद्मे हुम्'* अर्थात वह मणि के समान प्रकाश–वान है और उसमें गरज की ध्वनि हो रही है। 'हुम्' कहते हैं, गरज को। थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापक मॅडम ब्लावाट्स्की ने उसे 'Voice

of the Silence' (चुप की आवाज़) कहा है। मेसन संस्था वाले उसे 'The Lost Word' अर्थात गुप्त शब्द कहते हैं, जिसकी तलाश हर मेसन मास्टर को है। कुरान शरीफ़ (36.82) में आता है कि ख़ुदा ने कहा है, *'कुन फ़ैयकून,'* "उससे आवाज़ प्रकट हुई और सारी सृष्टि पैदा हो गई।" मुसलमान फ़क़ीरों ने उसे 'कलामे–क़दीम' भी कहा है। तो सबकी बुनियादी (मूलभूत) तालीम यह है। जब तक अनुभवी पुरुष रहे, काम बनता रहा। अब भी अनुभवी पुरुष की ज़रूरत है, जो अनुभव दे सके। मीराबाई रानी होते हुए रविदास जी के पास गई, जो जूता गाँठने का काम करते थे, केवल इसी चीज़ के लिए।

तो 'नाम' कहो, 'शब्द' कहो, 'Word' कहो, प्रभु–सत्ता है। उसमें ज्योति का विकास है, नाद का अनुभव है। वह सीधा रास्ता है, वापस प्रभु के घर जाने का। वह प्रभु अनाम है, अशब्द है। जब व्यक्त हुआ, तो 'नाम' हुआ। 'नाम' के साथ लगोगे, तो कहाँ पहुँचोगे? जहाँ से वह आ रहा है अर्थात अनाम में। बाक़ी जितने रास्ते हैं, उनमें कोई कल्पित आधार बनाना पड़ता है। अनुभवी पुरुष पहले दिन ही इंद्रियों के घाट से ऊपर लाकर थोड़ी पूँजी तुमको देता है, ज्योति और श्रुति की। इसीलिए कहा, 'Philosophy deals with theory, while Mysticism deals with Reality direct' अर्थात दर्शन का संबंध सिद्धांतों से है और अध्यात्म सीधा सत्य से जुड़ने का नाम है। अब आप संतों की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करें। योगीजन नीचे 6 चक्रों को तय कर आज्ञा चक्र पर आते हैं, तो 'अनहद शब्द' को पकड़ सहस्त्रार में जाते हैं। संत अपनी थोड़ी तवज्जोह देकर पहले ही दिन छः चक्र तय करा देते हैं, जो सैकड़ों वर्ष तप करने के बाद भी, जिनमें हड्डियाँ ढेर हो जाती थीं, तय नहीं होते थे। कितनी भारी रियायत है। पुराने ज़माने में कहते हैं सैंकड़ों वर्ष की, हज़ारों वर्ष की उम्रें होती थीं। आज 60-70 वर्ष से ऊपर आम लोग नहीं जाते। तो समय को देखते हुए, संतों ने मार्ग सरल और संक्षिप्त कर दिया। कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब आदि ने 'सुरत–शब्द योग' को प्रचलित किया, प्राणों को बीच में से छोड़ दिया, सुरत को पिंड से ऊपर लाकर सीधा 'नाम' से जोड़ दिया।

नाम कहाँ है?

नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु।। देही महि इस का बिस्रामु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म°5, पृ°293)

वह तुम्हारे अंतर में है। कैसे मिलता है?

अदृसट अगोचरु नामु अपारा।। अति रसु मीठा नामु पिआरा।।

– आदि ग्रंथ (मारू म°1, पृ°1042)

वह बाहर दृष्टि का विषय नहीं। बाहर से हटना पड़ेगा। इंद्रियों के घाट से ऊपर आओ, अगोचर अवस्था को पाओ, फिर मिलेगा। उसकी निशानी क्या है? ज्योति और नाद, जिनका व्यक्तिगत अनुभव संतों से मिलता है।

सुरत-शब्द योग

योग 'युज्' धातु से निकलता है, जिसके मा'ने हैं, जुड़ना। आत्मा को परमात्मा से मिलाने के लिए कई प्रकार की योग–पद्धतियाँ चलीं, जैसे :

1. हठयोग : इससे शरीर स्वस्थ हृष्ट–पुष्ट होता है।

2. प्राणयोग : इससे प्राणों की साधना कर आयु लंबी कर सकते हैं।

3. ज्ञानयोग : इसमें बुद्धि को सूक्ष्म करके जीव और ब्रह्म की एकता को बुद्धि–विचार द्वारा समझाते हैं।

4. भक्तियोग : इसमें कोई hypothesis, कल्पित आधार, बनाना पड़ता है।

5. सुरत–शब्द योग : सुरत के मा'ने हैं तवज्जोह, होश, ध्यान। रूह और आत्मा को भी सुरत कहते हैं। शब्द– धुनात्मक नाम, श्रुति, उद्गीत, Word, नाम, कलमा– वाणी को कहते हैं, जो करण–कारण प्रभु–सत्ता के नाम हैं। यह स्वाभाविक मार्ग है। सुरत का 'शब्द' के साथ स्वाभाविक संबंध है, आकर्षण है। दुनिया का कोई भी काम हम नहीं कर सकते, जब तक सुरत साथ न हो। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

जेही सुरति तेहा तिन राहु।।

– आदि ग्रंथ (सिरा म°1, पृ°25)

सुरत का शब्द के साथ जुड़ने का नाम है, 'सुरत–शब्द योग', इसको 'सहज योग' भी कहते हैं। इसमें कोई कष्ट नहीं सहना

पड़ता। यह सहज मार्ग है– बच्चा, वयस्क, बूढ़ा, हर कोई कर सकता है। इसमें सिर्फ़ तवज्जोह या सुरत से 'शब्द' या 'नाद' को सुनना है। इसके लिए संसार को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, न धर्म या समाज बदलने की। 'सुरत–शब्द–योग' के तीन साधन हैं– सुमिरन, ध्यान और भजन।

(i) सुमिरन क्या है?

सुमिरन का मतलब है, याद। दुनिया में सभी अपने–अपने काम का सुमिरन करते हैं, व्यापारी अपने व्यापार का, ज़मींदार खेती–बाड़ी का, नौकरी–पेशे वाले नौकरी का, माता बच्चे का। जिसका सुमिरन करो उसका रूप सामने आ जाता है। जिसका सुमिरन उसका ध्यान। यह कुदरती साधन है, जो हर कोई कर रहा है। दुनिया का सुमिरन कर–कर दुनिया इंसान के दिल–दिमाग़ में समा गई, यह जगत का रूप हो गया। बाहर देख–देखकर, सुन–सुनकर संस्कार पड़ रहे हैं, पड़ते जा रहे हैं निरंतर। गणितज्ञों ने हिसाब लगाया है कि 83 प्रतिशत संस्कार आँखों के रास्ते आते हैं, 14 प्रतिशत कानों के रास्ते और शेष अन्य इंद्रियों के रास्ते। इन्द्रियाँ यदि बाहर के संस्कार लेना बंद कर दें तो जो मलिनता आगे भरी पड़ी है, उसी को धोना पड़ेगा न? और मलिनता तो नहीं जाएगी। दुनिया हमारे मन बसी, दुनिया का सुमिरन कर करके। अब प्रभु के संस्कार बिठाने के लिए सुमिरन कहो, जप कहो, पहला क़दम है। यह लोहे से लोहे को काटना है। तो पहली बात है, प्रभु की प्यार भरी याद, ताकि जो संस्कार इंद्रियों द्वारा हमारे अंदर बैठ गए हैं, वह निकल जाएँ और उसकी जगह प्रभु की याद बस जाए। ऐसी प्रबल याद हो कि आहें भी उसी की भरने लगें।

एको जपि एको सालाहि।। एको सिमरि एको मन आहि।।
एकस के गुन गाउ अनन्त।। मनि तनि जापि एक भगवंत।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰289)

मन करके, तन करके, प्यार–प्रेम से उसकी याद करो। इतनी याद हो कि प्रभु के संस्कार भर जाएँ, सोते में बरबड़ाएँ, तो भी प्रभु का नाम मुख से निकले। यह निशानी है, याद बनने की। अब क्या निकलता है?

पकड़ो, धकड़ो, यह करो, वह करो। दुनिया मन में बसी है, वही निकलती है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

सपनहुँ में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी, मेरे तन की चाम।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (नाम का अंग 31, पृ.86)

सोते में बरबड़ाकर जिसके अंतर से निकलता है, "हे प्रभु! हे सत्गुरु!" कहते हैं, उसके पाँव की जूतियों के लिए मैं अपने तन का चमड़ा दे दूँगा।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस।।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस।।
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस।।

— आदि ग्रंथ (जपु जी 33, पृ°7)

अर्थात एक जिह्वा से लाख जिह्वा बन जाएँ और लाख से बीस लाख जिह्वा बन जाएँ। इन सब जिह्वा से लाखों गेंडे (चक्र) प्रभु का सुमिरन किया जाए, इतना ज़बरदस्त सुमिरन हो। कहते हैं, यह पति (प्रभु) को पहुँचने की पौड़ियाँ हैं, जो चढ़ जाए प्रभु से अभेद हो जाता है। स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज कहते हैं :

मन इन्द्री उल्टो घट माहीं। सुरत निरत दोउ नैन जमाई।।

— सार बचन (बचन 22, शब्द 1)

सुमिरन रूह की ज़बान से विदेह होकर किया जाता है अर्थात अभ्यासी को तन–मन की सुधि नहीं रहती। कबीर साहिब कहते हैं :

देही में उद्यम करे सिमरन करे विदेह।

सुरत या रूह की ज़बान से सुमिरन तभी होता है, जब मन सो जाता है और सुरत जाग उठती है। स्वामी जी महाराज ने इसीलिए कहा :

बिखरी धुनें समेट कर, सब एक करो री।

— सार बचन (बचन 39, शब्द 9)

जब सुमिरन परिपक्व हो जाए, तो धारणा शक्ति जाग उठती है और अंतर प्रकाश हो जाता है। कबीर साहिब कहते हैं :

तीन बंध लगाय कर, मुख से कछु न बोल।
बाहर के पट देय कर, अंतर के पट खोल।।

बाइबिल में आता है :

'When thou hast shut thy doors, pray to thy Father which is in secret; and thy Father which seeth in secret shall reward thee openly.'

– Holy Bible (Matt. 6:6)

तुम देह के दरवाज़ों को बंद कर लो, तो तुम्हारे पिता तुम्हें ईनाम देंगे।

'शब्द' या 'नाम' में, जिसे ईशु मसीह ने 'Word' की संज्ञा दी है, ज्योति या Light है। ईशु का कथन है :

'Thy Word is a Lamp unto my feet and a Light unto my path.'

– Holy Bible (Psalm 119:105)

हे प्रभु! तेरा शब्द ज्योति है, मेरे रास्ते की।

इसी संदर्भ में कहा :

'If therefore thine eye be single, thy whole body shall be full of Light.'

- Holy Bible (Matt. 6:22)

यदि तुम्हारी दो से एक आँख बन जाए, तो तुम्हारा सारा शरीर ज्योति से भर जाएगा।

दो से एक आँख कैसे बनती है? यह करनी का विषय है, जिसका व्यक्तिगत अनुभव गुरु देता है।

(ii) ध्यान किसको कहते हैं?

ध्यान संस्कृत धातु, 'ध्यै' से निकला है, जिसके मा'ने हैं, ध्याना, सुमिरन, ख़्याल करना। ध्यान है, देखना और सोचना। इंसान ध्यान किए बिना नहीं रह सकता है। हरेक मनुष्य जो धंधा करता है, रात को सोते वक़्त उसका सुमिरन करता है, साथ ही उसका ध्यान भी करता है। सुमिरन और ध्यान का परस्पर अटूट संबंध है। दुनिया का ध्यान और सुमिरन करके ही बार–बार जीव दुनिया में आता है। अब किसका ध्यान करें, जिससे फिर

दुनिया में न आएँ। कबीर साहिब कहते हैं, *'सो ध्यान धरो जे बहुड़ न धरना'* कि ऐसा ध्यान धरो, जिससे आना–जाना ख़त्म हो जाए। वह कौन–सा ध्यान है? गुरुवाणी के अनुसार, धुन या ध्वनि को जानने और सुनने का नाम ध्यान है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰59)

मालिक का रूप 'शब्द' है, प्रेम है, जो अकथ है, बेज़बानी की ज़बान में है। दुनिया के जितने ध्यान हैं, उनमें सर्वोच्च ध्यान प्रभु का ध्यान है या करण–कारण प्रभु–सत्ता, 'God in action Power', 'नाम' या 'शब्द' के साथ जुड़ना और उसको सुनना है, या फिर उस सत्स्वरूप महापुरुष का ध्यान, जिसमें वह 'शब्द' या 'नाम' प्रकट है। पहला ध्यान असंभव है, क्योंकि,

बिनु पेखे कहु कैसो धिआनु।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1140)

गुरु अर्जन साहिब कहते हैं, जिसको देखा नहीं, उसका ध्यान कैसे हो सकता है? गुरु का ध्यान सबसे पहले हो सकता है, क्योंकि हम उसको देखते हैं। वह 'शब्द' या 'नाम'–सदेह है। उसके द्वारा ही हम 'नाम' या 'शब्द' का ध्यान करने योग्य बन सकते हैं।

हमारी मुश्किल यह है कि दृश्य जगत से, जो दिखाई दे रहा है, उससे हमारा प्यार है। शरीर और शरीर करके, जो संबंध बने, उनसे हमारा प्यार है। शरीर और शरीर करके जो सम्बंध बने, उनसे हमारा ता'ल्लुक है। उनको देख–देखकर संस्कार बैठ रहे हैं। हम बाहर छिलके को, आवरण को, देख रहे हैं कि कैसा लेबल किसी ने लगाया है। हिंदू है कि मुसलमान, सिक्ख है कि ईसाई? फिर कोई चाचा है कोई ताऊ, कोई माता है, कोई पिता। इसी में रोज़ संस्कार दृढ़ हो रहे हैं। परिणाम क्या है? *"जहाँ आसा तहाँ वासा।"* बार–बार दुनिया में आते हैं। तो दृश्य जगत को देखना हमारी प्रकृति में है। तो फिर कहाँ देखें, किसे देखें? प्रभु को तो देखा नहीं। पहला क़दम क्या है? इस विषय में कहा :

गुरु का ध्यान कर प्यारे। बिना इस के नहीं छुटना।।

– सार बचन, पद्य (बचन 19, शब्द 2)

गुरु हमारी तरह इंसानी शक्ल ज़रूर रखता है, मगर उसमें वह प्रभु प्रकट है। वह Man-in-God अर्थात प्रभु में अभेद है, God-in-Man है, प्रभु उसमें काम कर रहा है। उसका ध्यान करोगे, तो कहाँ जाओगे? जहाँ वह जाएगा। लेकिन, अगर उस घट में प्रभु प्रकट नहीं है, तो कहाँ जाओगे? इसलिए ध्यान करना बड़ा ख़तरनाक भी है। जिसका चिंतन करो, उसका तुम रूप बनोगे— यह नियम है। इसीलिए कहा है, *"गुरु कीजे जान कर, पानी पीजे छानकर।"* श्री हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज फ़रमाया करते थे कि सारी उम्र खोज में लग जाए, कोई चिंता नहीं। मगर गुरु, गुरु हो। सच्चा गुरु मिले, तभी जीव का सच्चा कल्याण है। तो जिसमें प्रभु प्रकट है, उनका ध्यान पहला क़दम है। सारे महात्मा अपना–अपना ध्यान बताते हैं, एक नहीं, सभी। जो सचमुच गुरु हैं, उनका ध्यान तो ठीक है, पर जो सच्चे गुरु नहीं हैं, उनका ध्यान करने से क्या मिलेगा? फिर ध्यान क्यों कराया जाए? इसलिए महाराज कृपालसिंह जी अपने दीक्षितों को कोई ध्यान नहीं बतलाते। वह फ़रमाते हैं, "ख़ुदा वही है जो ख़ुद[29] आप आए।" जो अंतर में प्रकट है, अपने आप उसकी झलक आएगी।

जैसे सीड़ियों के बग़ैर हम दुर्ग पर नहीं चढ़ सकते, ऐसे ही गुरु के ध्यान के बिना (गुरु, गुरु हो) हम प्रभु तक नहीं पहुँच सकते। गुरु की कसौटी पहले दी जा चुकी है— जो पहले दिन, सामने बिठाकर, ज्योति और श्रुति का अंतर्मुख अनुभव दे सके। ऐसे समर्थ पुरुष का ध्यान स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और उसके पार, मालिक तक पहुँचाने की सीढ़ी है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ गुर हरि धिआन निहाल।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰17)

---

29. 'नाम' लेने के कुछ समय पश्चात, महाराज कृपालसिंह जी ने हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज से पूछा था कि शिष्य बाहर से हट जाए, अंतर में अगली मंज़िल के कपाट खुलें नहीं, गुरु के दिव्य–स्वरूप के दर्शन न हों, तो वो क्या करे?" हुज़ूर सच्चे पादशाह ने फ़रमाया, "लोग बच्चों का ध्यान करते हैं, गाय–भैंसों का, रुपए–पैसे और जायदादों का ध्यान करते हैं, तो साधू का ध्यान क्या बुरा है?" फिर फ़रमाया, "गुरु जब नाम देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है। ध्यान करके जाओ या बिना ध्यान किए, अंतर में जो बैठा है, वह अवश्य दिखाई देगा।" इसलिए, उन्होंने कभी किसी का ध्यान नहीं बताया। अंतर में जो बैठा है, वह आप दिख जाता है।

तो गुरु का ध्यान एक सीढ़ी है, मंज़िल पर चढ़ने के लिए। यदि वह (गुरु) 'नाम'–सदेह है, तो उसकी radiation होगी कि नहीं? गंधी की दुकान पर तुम जाओ, वह तुम्हें कुछ भी न दे, सुगंधि तो आएगी। यदि वह इतर की शीशी भी साथ में दे दे, फिर तो क्या बात है! कई लोग कहते हैं कि हम सर्वव्यापकता का ध्यान करते हैं। सर्वव्यापकता तो आकाश का गुण है, उसका ध्यान आकाश का ध्यान है। यह तो अपना बनाया हुआ ध्यान है, सूक्ष्म तत्त्वों का ध्यान। जिसको देखा नहीं, उसका ध्यान कैसा? अंतर कोई चीज़ होनी चाहिए, खड़े होने के लिए। जब तक गुरु का ध्यान न बने, रूह (सुरत) अंतर में खड़ी नहीं हो सकती। गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं :

जेता पेखनु तेता धिआनु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰236)

और कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

सबद बिना सुरत आंधरी, कहो कहाँ को जाए।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाए।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (शब्द का अंग, शब्द 15, पृ.93)

अंदर दो ताक़तें हैं– एक सुरत, दूसरी निरत। निरत काम है, देखना। जब तक निरत न खुले, ख़ाली 'शब्द' सुनने से पूरा फ़ायदा नहीं होता। जब तक निरत आगे न चले, सुरत ऊपर के मंडलों में नहीं जा सकती।

निरत सखी को अगुवा करके।
(सतलोक चढ़ जाऊँगी।)

– सार बचन, पद्य (बचन 35, शब्द 20)

(iii) भजन

भजन कहते हैं, सुरत से नाद को सुनना। जब सुरत बाहर फैलाव से हटकर, इंद्रियों का घाट छोड़कर ऊपर आ जाए, वह ध्वनि को, नाद को सुनती है। यह धुन या ध्वनि गुरु द्वारा ही सुनी जा सकती है।

धुनि आने गगन की सो मेरा गुरुदेव।।

– पलटू साहिब की बानी, भाग 1 (गुरुदेव, कुंडलिया 5, पृ.6)

वह अखंड ध्वनि हो रही है, जिसको मुसलमान फ़क़ीर 'समाअ' कहते हैं। बू–अली शाह क़लन्दर कहते हैं :

चश्म बंदो-गोश-बन्दो-लब बबंद,
गर न बीनी सिर्रे-हक़्क बर मन बख़ंद।

– बू–अली शाह क़लन्दर, मसनवी (पृ.30)

यही कबीर साहिब कहते हैं :

आँख कान मुँख बंद कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ।

– कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1 (शब्द 22, पृ.65)

यह तीनों साधन– सुमिरन, ध्यान और भजन– शिव–नेत्र कहो, दिव्य–चक्षु कहो या नुक़तए–सवेदा पर किए जाते हैं, दो भ्रू–मध्य, जहाँ पिंड (स्थूल देह) की हद है। मौलाना रूम कहते हैं :

चूं ज़ हिस्स बेरूं नयामद आदमी, बाशद अज़ तस्वीरे-ग़ैबी अअज़मी।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.106)

जब तक जिंसों से, मन–इंद्रियों से, इंसान ऊपर न आए, वह अदृश्य का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यह साधन गुरु से दीक्षित होकर ही किया जा सकता है। इसीलिए कहा गया है :

करमु होवै सतिगुरु मिलाए।। सेवा सुरति सबदि चितु लाए।।

– आदि ग्रंथ (माझ म॰1, पृ॰109)

प्रभु की दया हो, तो सत्गुरु मिलता है और उसके द्वारा 'सुरत–शब्द योग' की दीक्षा मिलती है। 'सुरत–शब्द योग' की कमाई से इंसान दुनिया में रहते हुए अलेप रहता है।

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे।।
सुरति सबदि भव सागरु तरिऐ नानक नामु वखाणे।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰938)

संतों का आदर्श

संतों का आदर्श बहुत ऊँचा है– पिंड, अंड, ब्रह्मंड, पारब्रह्म के परे सचखंड– सत्नाम, बल्कि उससे भी आगे अलख, अगम के पार, अकह,

अनामी स्वामी देश, उनका आदर्श और ठिकाना है, जिसे संतों की वाणियों में महादयाल, निराला के नाम से वर्णन किया गया है। स्वामी जी महाराज ने उसे राधास्वामी अर्थात सुरत का स्वामी कहा है। गुरु अर्जन साहिब ने फ़रमाया :

सतलोक के ऊपर धावे, अलख अगम की तब गत पावे।
तिसके ऊपर संतन धाम, नानक दास कियो बिसराम।।

और स्वामी जी महाराज की वाणी में आया है :

क्षर अक्षर निहअक्षर पारा। बिनती करे जहां दास तुम्हारा।।
— सार बचन (बचन 7, शब्द 1)

एक तो यह नश्वर जगत है, इसको कहते हैं, छर या क्षर। इससे ऊपर, त्रिलोकी तक, जहाँ प्रलय होती है, उसको कहते हैं, अक्षर। त्रिलोकी से आगे, महाप्रलय की हद तक जो है, उसको कहते हैं, निःअक्षर। फ़रमाते हैं, उसके पार खड़े होकर, हे मालिक! हम पुकार रहे हैं। क्षर तक तो सारा जहान बयान करता है। अक्षर तक वेद–शास्त्र, ग्रंथ–पोथियाँ उसका ज़िक्र करती हैं। आगे थोड़ा पुरुषोत्तम का ज़िक्र करके छोड़ देते हैं, जो आधार है, क्षर और अक्षर का। संतों की वाणियों में निःअक्षर और उसके पार का भी ज़िक्र मिलता है। कबीर साहिब ने इस संदर्भ में कहा है :

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम घट-घट में बैठा,
एक राम का सकल पसारा, एक राम सबहूं ते न्यारा।

एक राम तो अवतार हुए, भगवान रामचंद्र जी। दूसरा राम है, मन, जो घट–घट में बैठा है, जो काल की अंश है। एक काल है, उसका (मन का) स्वामी, जिसका यह सब पसारा है। वह तीसरा राम है और चौथा राम वह है, जो उसका (काल का) भी आधार है। वह सिर ताक़त जो है, वह संतों का राम है। क्षर, अक्षर, निःअक्षर के पार, काल–महाकाल के घेरे से पार रसाई (पहुँच) का इशारा है। जहाँ तक कोई गया, उसी को आख़िरी मुक़ाम समझकर रह गया। वेद–शास्त्र, ग्रंथ–पोथियाँ सिर्फ़ ब्रह्म तक इशारा देती हैं। संत कहते हैं ब्रह्म से आगे भी बहुत कुछ है— पारब्रह्म, सतलोक, अलख, अगम और अनामी का ज़िक्र संतों की वाणियों में मिलता है। इसीलिए, गुरु अर्जन साहिब ने कहा,

गुर की महिमा बेद न जाणहि।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1078)

इस कथन की पुष्टि गीता और अन्य ग्रंथों से भी मिलती है। गीता के दूसरे अध्याय (श्लोक 45) में आता है :

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

अर्थात "हे अर्जुन! वेद केवल तीन गुणों का ज्ञान तुम्हें देगा, उसके आगे का उसे पता नहीं। तीन गुणों के पार जाओ, अगर तुम आत्म–ज्ञान को पाना चाहते हो।" इसी प्रकार, मुण्डकोपनिषद् में, जहाँ परा–विद्या और अपरा–विद्या का वर्णन है, वहाँ चारों वेदों को अपरा–विद्या अर्थात बाहर की विद्या कहा है। पहले अध्याय (श्लोक 3-5) में आता है कि शौनक (स्वानिक) ऋषि को उसके गुरु इंगिरस ऋषि ने कहा, "ज्ञान दो प्रकार का है– अपरा–विद्या और परा–विद्या। चारों वेद और छः वेदांग, अपरा–विद्या में शामिल हैं। इनसे मुक्ति नहीं। परा–विद्या उत्तम विद्या और सर्वोच्च ज्ञान है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है, आना–जाना ख़त्म हो जाता है।" वेदों की पहुँच ब्रह्म तक है, जबकि संत ब्रह्म और पारब्रह्म, दोनों के पार जाते हैं। ब्रह्म तक सारी रचना काल के घेरे में है। अथर्ववेद (उदाहरणार्थ 4:16:4) में काल, जिसे वेद 'त्रिलोकीनाथ' कहता है, का वर्णन इन शब्दों में आता है, :

दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।

उसकी हज़ार आँखें हैं। असंख्य संतति है, उसकी। उसका कभी नाश नहीं होता। उसने सारे जगत को पैदा किया, सबको मारने वाला भी वही है। वह सबका कर्ता है, देवों का देव है। सब देवता उसकी पूजा करते हैं, उससे ऊँची शक्ति जगत में नहीं। ऊपर के लोकों में उसे 'काल' के नाम से पुकारते हैं। पृथ्वी, आकाश, उसी ने बनाए, उसी ने सूर्य को प्रकाश और गर्मी दी। जितनी यह हिलोर है, गति, काल ही से निकली है। जो कुछ दिखाई देता है, सबकी उत्पत्ति काल से हुई है। काल ही से मन है, काल ही से प्राण है, आँख काल ही से देखती है। काल ही में नाम स्थित है अर्थात जुड़ा हुआ है। काल ही प्रजापति का पैदा करने वाला, सबका मालिक है।

जगत का बनाने वाला और उसका आधार वही है। काल में ही देव अग्नि है, और काल में अति पवित्र और अति उत्तम ब्रह्म है। काल मानो एक घोड़ा है, जिसकी सात बागें हैं। कोई पूर्ण संत ही उस पर सवार होता है। काल के सिर के ऊपर बाल जैसा बारीक़ एक रास्ता है, जिससे यहाँ न रहने के इच्छुक जीव निकल जाएँ।

गुरुवाणी में भी आता है :

सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही।।

– आदि ग्रंथ (धनासरी म॰1, पृ॰663)

आत्मा सत्पुरुष की अंश है, काल के दायरे में क़ैद है। मन काल का दूत है, जिसका काम यह है कि आत्मा को दुनिया में फँसाए रखे, उसे अपने निज–घर, सचखंड, सत्नाम में जाने न दें। मन ब्रह्म की अंश है, इसका मुक़ाबला करना आसान नहीं। काल बड़ा बली है। योग वसिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ भगवान राम से कहते हैं, "हे राम! यदि कोई कहे कि उसने समुद्र को पी लिया है, पृथ्वी को हाथों पर उठा लिया है या आसमान पर ज़ोर से चलती आंधी और तूफ़ान को रोक लिया है, तो मैं बिना देखे मान लूँगा। परंतु कोई यह कहे कि उसने मन को वश में कर लिया है, तो यह बात मैं कभी मानने को तैयार नहीं। हे राम! मन के आगे ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पेश नहीं जाती। बड़े–बड़े योद्धाओं, योगियों और तपीश्वरों को इसने धराशायी कर दिया है।"

काल के जाल से संतजन ही निकले हैं और लोगों को इस जाल से निकालते हैं, वरना सारी दुनिया को काल ने बाहर कर्म–धर्म में फँसा रखा है, जिससे वह बार–बार दुनिया में आते रहें। संत कहते हैं :

करम धरम पाखंड जो दीसहि तिन जम जागाती लूटै।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰747)

एक आदमी, जो काम करता है, वह कर्म और जो सब मिलकर करें, वह 'धर्म' कहलाता है। नेक कर्म का नेक फल है, बुरे कर्म का बुरा। जब तक निःकर्म नहीं होता, आना–जाना पड़ता है। आशा–तृष्णा मिटी नहीं, यमों के हवाले होना पड़ता है। शुभ कर्मों के फल यमदूत (यम) मार्ग में लूट लेते हैं।

रास्ते में प्यास लगती है, तो यमदूत कहते हैं, अमुक पुण्य का फल दो, तब पानी मिलेगा। थक जाता है, आराम करना चाहता है, तो कहते हैं, अमुक पुण्य का फल हमें दो। इस प्रकार यात्री (आत्मा) रास्ते में लूटी जाती है।

जिह पैडै लूटी पनहारी।। सो मारगु संतन दूदारी।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰393)

अर्थात जिस यम–मार्ग पर मुसाफ़िर रूह लूटी जाती है, संतों के सेवक को वहाँ नहीं जाना पड़ता। वह जो यथार्थ धर्म है, धार रही शक्ति जो है, (करण–कारण प्रभु–सत्ता) 'शब्द' या 'नाम' उससे जोड़ देते हैं, जिसको देख यम दूर से भाग जाते हैं। गुरुवाणी में आता है :

अफरिओ जमु मारिआ न जाई।। गुर कै सबदे नेड़ि न आई।।
सबदु सुणे ता दूरहु भागै मतु हरजू मारे हरि जीउ वेपरवाहा हे।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰3, पृ॰1054)

संत महाकाल की हद से पार जाते हैं, अपने सेवकों को भी काल–माया की सीमा से निकालकर ले जाते हैं। दशम गुरु साहिब ने फ़रमाया :

काल हूं के काल महा काल हूं के काल हैं

– दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ॰13)

संतों का आदर्श जीवों को काल के घेरे से निकालकर सत्पुरुष सतनाम की गोद में पहुँचाना है।

⌘⌘⌘